मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

•

तृतीय अधिवेशन : जबलपुर

•

विवरण

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

तृतीय अधिवेशन : जबलपुर

•

विवरण

दो शब्द

सम्मेलन के अधिवेशन के विवरण के प्रकाशन का प्रावधान विधान में है । अभी तक इस दिशा में म० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन सक्रिय नहीं रहा है । हम जबलपुर-अधिवेशन का विवरण प्रकाशित कर पुरानी परम्परा का पुनः श्री गणेश कर रहे हैं । इस तरह के विवरण कालान्तर में अनेक संदर्भों में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ।

हमने विवरण को हर प्रकार से पूर्णता देने का यत्न किया है । हमें दुःख है कि साहित्य-गोष्ठी में पठित श्री प्रमोद वर्मा और श्री कैलाश नारद तथा भाषा-गोष्ठी में पठित डा. प्रेमचन्द श्रीवास्तव और श्री सुन्दरम के निबन्ध प्राप्त नहीं हो सके इसलिए उनका प्रकाशन नहीं हो सका । इसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं ।

—स्वागत-मंत्री

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन के अवसर पर प्राप्त

संदेश

पत्रावली सं० १८ (२)–हि. ६५

भारत के राष्ट्रपति का सचिव,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली–४

प्रिय महोदय,

आपके दिनांक ३ जनवरी, १९६५ के पत्र से राष्ट्रपति जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि दिनांक २०, २१ जनवरी १९६५ को मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन करने तथा उक्त अवसर पर मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सर्वेक्षण पत्रिका के प्रकाशन का आयोजन किया जा रहा है।

उपरोक्त अधिवेशन की सफलता के लिये राष्ट्रपति जी अपनी शुभकामनायें भेजते हैं।

जनवरी १६, १९६५

भवदीय
का० र० दामले

•

पत्र सं० ६।७।६५–हि.

प्रधान मंत्री सचिवालय
नई दिल्ली–११

प्रिय महोदय,

प्रधान मंत्री जी के नाम आपका पत्र दिनांक ३ जनवरी, १९६५ प्राप्त हुआ।

प्रधान मंत्री जी मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के लिए अपनी शुभकामनाएँ भेजते हैं।

जनवरी ११, १९६५

भवदीय
प्राणनाथ साही
प्रधान मंत्री जी के निजी सचिव

मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन इस वर्ष प्रांत के मुख्य मंत्री पंडित द्वारका-प्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में सम्पन्न हो रहा है। मेरा विश्वास है कि माननीय मिश्रजी का दृढ़ व्यक्तित्व और उनकी प्रशासकीय दूरदर्शिता इस सम्मेलन को अनिवार्य स्थिरता और आगे बढ़ने की योग्यता प्रदान करेगी।

इधर हिन्दी का प्रश्न मेरी दृष्टि में उसके राष्ट्रभाषा होने न होने का नहीं रहा है। अपने सहज अधिकार से, अपनी प्रजा-तांत्रिक सामर्थ्य से वह सदा राष्ट्रभाषा रही है, वह सदा राष्ट्रभाषा रहेगी। उसका यह अधिकार कोई भी शक्ति छीन नहीं सकती। प्रश्न यह है कि इस राष्ट्रभाषा को हम कौन सा व्यवहार दे रहे हैं। हिन्दी प्रांतों में प्रशासकीय धरातल पर हिन्दी का न आ पाना प्रशासकीय अक्षमता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मुझे प्रसन्नता है कि माननीय मिश्रजी ने मध्यप्रदेशीय प्रशासन में हिन्दी का प्रयोग अनिवार्य कर दिया है। मध्यप्रदेश साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में वे अधिक अधिकार से और किंचित तीव्रता से यह कार्य कर सकेंगे इसमें मुझे सन्देह नहीं है।

उधर हिन्दी के कलम सेवी को मुझे अपने ४–५ बरस पूर्व व्यक्त किये गये विचारों की सुधि दिलानी है। मैंने कहा था "भारत को स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् राष्ट्रभाषा का प्रश्न उतना गम्भीर नहीं है जितना हिन्दी भाषा को विश्व की अन्य भाषाओं की बराबरी से खड़ा करने का प्रश्न है। सन् १९१० से सन् १९४७ तक हमने राष्ट्रभाषा का आन्दोलन भले ही किया हो किन्तु अब हमें हिन्दी के उन्नयन में लगना है। यही हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता है। हिन्दी से इतर देश की और विश्व की समस्त भाषाओं के समक्ष हिन्दी की शक्तिशाली मूर्ति (या Image) को उभरकर आना चाहिए। हिन्दी की मूर्धन्य कृतियों को अनुवादों और समीक्षाओं के बल से विश्व-व्याप्ति

मिलनी चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन मेरी इस बात पर गम्भीरता से विचार करेगा।

मुझे प्रसन्नता है कि यह सम्मेलन श्रेष्ठ कवि, नाटककार तथा हिन्दी के एकनिष्ठ साधक श्री जगन्नाथप्रसाद जी 'मिलिन्द,' मध्यप्रदेश की अप्रतिम अहिन्दी भाषिणी कहानी लेखिका सुश्री उषादेवी मित्रा, तरुणाई और शील के समन्वय प्रखर कवि व नाटककार श्री हरिकृष्ण प्रेमी, हिन्दी को उर्दू की सफाई और जिन्दादिली प्रदान करनेवाले भाई रामानुजलाल श्रीवास्तव तथा परम विद्वान मनीषी श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और खड़ी बोली के प्रवर्तक कवियों में प्रमुख श्री मुकुटधर जी पाण्डेय का विशिष्ट रूप से सम्मान कर रहा है। मैं इन सबों के प्रति अपना सम्मान प्रकट करता हूँ और इस सम्मेलन की सफलता की कामना करता हूँ।

खंडवा
१८-१-६५

माखनलाल चतुर्वेदी

●

प्रिय महोदय,

आपका १ जनवरी, १९६५ का पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मध्यप्रदेश-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन २० और २१ जनवरी को जबलपुर में सम्पन्न होने जा रहा है और उसके अध्यक्ष श्री द्वारिकाप्रसाद जी मिश्र होंगे। मुझे सम्मेलन में उपस्थित होने से आनन्द होता किन्तु उन दिनों मैं कलकत्ते में रहूँगा जो पहले से निश्चित हो चुका है। अतः मुझे क्षमा करें।

श्री मिश्रजी की अध्यक्षता में प्रादेशिक सम्मेलन, मुझे विश्वास है, अवश्य ऐसा कदम उठायेगा जिससे हिन्दी-भाषी

राज्यों में हिन्दी अपना जन्मजात अधिकार प्राप्त कर सके और अन्य राज्यों के लिए भी अनुकरणीय हो। सम्मेलन की मैं पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

एफ १३।२ माडल टाउन, दिल्ली–६ आपका
दि.८–१–६५ **वियोगी हरि**

•

प्रिय महोदय,

आपका ता. ३० दिसम्बर का पत्र मिला। भाषा सम्मेलन की अध्यक्षता के लिये आपने जो आमंत्रण दिया उसको मैं स्वीकार सहर्ष करता, यदि ऐसा आमंत्रण एक महीने के पहले आ जाता।

इस बहाने मध्यप्रदेश के हिन्दी प्रेमी और साहित्य-स्वामियों का सहवास पाने का सौभाग्य भी मिलता। लेकिन जनवरी के ता. १८ से २३ तक गुजरात में एक-दो संस्थाओं को आने का वचन दे चुका हूँ और उन लोगों ने पूरी तैयारी भी की है, इसलिये मैं लाचार हूँ।

मैं देखता हूँ कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिये अब अच्छे दिन आ रहे हैं। आपके सम्मेलन को पूरी-पूरी सफलता मिलेगी ही।

'सन्निधि', राजघाट, नई दिल्ली–१ आपका
२–१–६५ **काका कालेलकर**

•

मैं सम्मेलन की सफलता चाहता हूँ। आशा है, मिश्र जी की अध्यक्षता में सम्मेलन इतना समर्थ और सत्ताशाली हो सकेगा कि साहित्यकारों के हितों की अधिक से अधिक रक्षा और उन्हें अधिक से अधिक सुविधा प्रदान कर सके।

१६–१–६५ **जैनेन्द्रकुमार**

•

प्रिय नर्मदा प्रसाद जी,

आपका १-१-६५ का कार्ड मिला। धन्यवाद। मुझे स्वयं इसका दुख है कि परिस्थितियों की विवशता के कारण मैं आपके आग्रह की रक्षा नहीं कर सका। आप मुझे जबलपुर में ही बसा लीजिये, फिर आप देखेंगे कि मैं जबलपुर के बाहर कहीं नहीं जाऊँगा। चूँकि भाग्य ने प्रयाग में बसा दिया है अब यहाँ से बाहर निकलना संभव नहीं हो रहा है।

....

अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ इस अवसर पर भेज रहा हूँ। आज के युग में हमें राष्ट्र भाषा ही नहीं बनानी है, राष्ट्रीय स्वरूप को भी संगठित करना है। हमारा दृष्टिकोण वैयक्तिक, सामाजिक जीवन के प्रति मध्ययुगीन ही रह गया है। हम मत मतांतरों में खोये हुए आज के युग की समस्याओं के प्रति बिल्कुल ही प्रबुद्ध नहीं हो पाये हैं। हिन्दी को हमें भाषा से भी अधिक राष्ट्रचेतना के रूप में ढालना है। उसके द्वारा अधिकारों को वाणी देनी है जो राष्ट्रीय एकता का पोषण करें, साथ ही जो हमारी उर्वर धरती के प्राणों में नयी शक्ति, नये संगठन, नयी प्रेरणा का संचार करें। हिन्दी भविष्य के विश्व जीवन की दर्पण बन सके।

१८ के. जी. मार्ग, इलाहाबाद

८-१-६५

आपका

सुमित्रानंदन पंत

प्रिय महोदय,

मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए आपका आमंत्रण मिला। एतदर्थ धन्यवाद।

मैं अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण अधिवेशन में उपस्थित होने के लिए असमर्थ हूँ।

अधिवेशन की मैं हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

चौपाटी रोड, बम्बई-७

५-१-६५

भवदीय

क० मा० मुन्शी

प्रिय महोदय,

हिन्दी जगत के सुप्रसिद्ध साहित्यिक और प्रतिष्ठित लोक-नेता श्री मिश्र जी आपके अधिवेशनाध्यक्ष हैं। उनके मार्ग-दर्शन में आपका यह अधिवेशन सफल होगा ऐसी मुझे उम्मीद है।

जय गुरु।

मु० पो० गुरुकुंज, जि० अमरावती
स्थल-गोंदला
दि. १६-१-१९६५

राष्ट्रसंत श्री तुकड़ो जी महाराज

•

महोदय,

आपका पत्र दिनाँक ९-१-६५ प्राप्त हुआ। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आगामी अधिवेशन २०-२१ जनवरी को जबलपुर में विद्वद्वर पं० द्वारका-प्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में सम्पन्न हो रहा है।

मैं आपके आयोजन की सफलता के लिए शुभकामना करता हूँ।

१६, कैवेलरी लाइंस, दिल्ली-७
दि० १४-१-६५

भवदीय
नगेन्द्र

•

मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जबलपुर अधिवेशन की हृदय से सफलता चाहता हूँ। ईश्वर से प्रार्थना है कि सम्मेलन के द्वारा मध्य प्रदेश में हिन्दी का नया जागरण हो। विशेषत: जनपदीय शब्दावली और लोकवार्ता संबन्धी सामग्री का जो विशाल भण्डार मध्यप्रदेश के विविध अञ्चलों में है उसका संग्रह समय रहते किया जाना चाहिये।

वाराणसी

वासुदेव शरण

•

प्रिय महोदय,

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता मिली कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन आदरणीय पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में हो रहा है। संविधान ने हिन्दी को जो राष्ट्रीय प्रतिष्ठा दी है उसको बनाये रखने में मध्यप्रदेश को भी बहुत बड़ा काम करना है। मैं अधिवेशन की सफलता चाहता हूँ।

२, किंग जार्ज एवेन्यू, पटना
५-१-६५

आपका
लक्ष्मीनारायण सुधांशु

●

बन्धुवर,

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन के लिए आपका कृपापूर्ण निमंत्रण मिला। आभारी हूँ। दु:ख है कि सम्मिलित होने में असमर्थ हूँ—अपरिहार्य व्यस्तताओं के कारण। अधिवेशन की सफलता की कामना पूरे मन से करता हूँ। २६ जनवरी १९६५ के ठीक पहले होनेवाले इस अधिवेशन का विशेष महत्व है।

अमरावती
९, टैगोरनगर, इलाहाबाद-२
१८-१-६५

शुभैषी
बालकृष्ण राव

●

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन की पूर्ण सफलता के लिये मेरी आन्तरिक शुभकामना स्वीकार कीजिये। राजनीति के इस नीरस युग में ऐसे ही साहित्य सम्मेलनों से नव-जीवन का संचार हो सकेगा।

वाराणसी उ० प्र०
१३-१-६५

शुभेच्छु
शांतिप्रिय द्विवेदी

●

प्रिय महोदय,

आपका ७ जनवरी का पत्र मिला। यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री 'कृष्णायनकार' पं० द्वारका-प्रसाद मिश्र जैसे सारथी की अध्यक्षता में दि० २०-२१ जनवरी को जबलपुर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन होने जा रहा है। ... ... मैं दिल्ली में अत्यधिक कार्यव्यस्त होने से आ नहीं सकूँगा पर स्व० हृदय, नवीन और मुक्तिबोध की यह भूमि मालव और महाकोशल की नयी-पुरानी सभी श्रेष्ठ प्रतिभाओं को नहीं भूलेगी ऐसा विश्वास है।

१०२ रवीन्द्र नगर, नई दिल्ली—११
१०—१—६५

सप्रेम
प्रभाकर माचवे

•

मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन आगामी २०, २१ जनवरी को होने जा रहा है। इसकी मुझे प्रसन्नता है। हिन्दी के प्रचार के लिए साहित्य सम्मेलन ने जो सेवा की है उससे सभी हिन्दी प्रेमी अच्छी तरह परिचित हैं। भाषा तथा साहित्य की सेवा तभी पुनीत कार्य है जब वह पारस्परिक सौहार्द्र तथा ऐक्य को बढ़ावे। मैं आशा करती हूँ साहित्य सम्मेलन अपने कार्य में सदैव इस बात का ध्यान रक्खेगा।

मैं इस अधिवेशन की सफलता की कामना करती हूँ।

लखनऊ,
७ जनवरी, १९६५

सुचेता कृपलानी

•

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन के अवसर पर प्राप्त

संदेश

पत्रावली सं० १८ (२)–हि. ६५

भारत के राष्ट्रपति का सचिव,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली–४

प्रिय महोदय,

आपके दिनांक ३ जनवरी, १९६५ के पत्र से राष्ट्रपति जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि दिनांक २०, २१ जनवरी १९६५ को मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन करने तथा उक्त अवसर पर मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सर्वेक्षण पत्रिका के प्रकाशन का आयोजन किया जा रहा है।

उपरोक्त अधिवेशन की सफलता के लिये राष्ट्रपति जी अपनी शुभकामनायें भेजते हैं।

जनवरी १६, १९६५

भवदीय
का० र० दामले

•

पत्र सं० ६।७।६५–हि.

प्रधान मंत्री सचिवालय
नई दिल्ली–११

प्रिय महोदय,

प्रधान मंत्री जी के नाम आपका पत्र दिनांक ३ जनवरी, १९६५ प्राप्त हुआ।

प्रधान मंत्री जी मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के लिए अपनी शुभकामनाएँ भेजते हैं।

जनवरी ११, १९६५

भवदीय
प्राणनाथ साही
प्रधान मंत्री जी के निजी सचिव

मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन इस वर्ष प्रांत के मुख्य मंत्री पंडित द्वारका-प्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में सम्पन्न हो रहा है। मेरा विश्वास है कि माननीय मिश्रजी का दृढ़ व्यक्तित्व और उनकी प्रशासकीय दूरदर्शिता इस सम्मेलन को अनिवार्य स्थिरता और आगे बढ़ने की योग्यता प्रदान करेगी।

इधर हिन्दी का प्रश्न मेरी दृष्टि में उसके राष्ट्रभाषा होने न होने का नहीं रहा है। अपने सहज अधिकार से, अपनी प्रजा-तांत्रिक सामर्थ्य से वह सदा राष्ट्रभाषा रही है, वह सदा राष्ट्रभाषा रहेगी। उसका यह अधिकार कोई भी शक्ति छीन नहीं सकती। प्रश्न यह है कि इस राष्ट्रभाषा को हम कौन सा व्यवहार दे रहे हैं। हिन्दी प्रांतों में प्रशासकीय धरातल पर हिन्दी का न आ पाना प्रशासकीय अक्षमता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मुझे प्रसन्नता है कि माननीय मिश्रजी ने मध्यप्रदेशीय प्रशासन में हिन्दी का प्रयोग अनिवार्य कर दिया है। मध्यप्रदेश साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में वे अधिक अधिकार से और किंचित तीव्रता से यह कार्य कर सकेंगे इसमें मुझे सन्देह नहीं है।

उधर हिन्दी के कलम सेवी को मुझे अपने ४—५ बरस पूर्व व्यक्त किये गये विचारों की सुधि दिलानी है। मैंने कहा था "भारत को स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् राष्ट्रभाषा का प्रश्न उतना गम्भीर नहीं है जितना हिन्दी भाषा को विश्व की अन्य भाषाओं की बराबरी से खड़ा करने का प्रश्न है। सन् १९१० से सन् १९४७ तक हमने राष्ट्रभाषा का आन्दोलन भले ही किया हो किन्तु अब हमें हिन्दी के उन्नयन में लगना है। यही हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता है। हिन्दी से इतर देश की और विश्व की समस्त भाषाओं के समक्ष हिन्दी की शक्तिशाली मूर्ति (या Image) को उभरकर आना चाहिए। हिन्दी की मूर्धन्य कृतियों को अनुवादों और समीक्षाओं के बल से विश्व-व्याप्ति

मिलनी चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन मेरी इस बात पर गम्भीरता से विचार करेगा।

मुझे प्रसन्नता है कि यह सम्मेलन श्रेष्ठ कवि, नाटककार तथा हिन्दी के एकनिष्ठ साधक श्री जगन्नाथप्रसाद जी 'मिलिन्द,' मध्यप्रदेश की अप्रतिम अहिन्दी भाषिणी कहानी लेखिका सुश्री उषादेवी मित्रा, तरुणाई और शील के समन्वय प्रखर कवि व नाटककार श्री हरिकृष्ण प्रेमी, हिन्दी को उर्दू की सफाई और जिन्दादिली प्रदान करनेवाले भाई रामानुजलाल श्रीवास्तव तथा परम विद्वान मनीषी श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और खड़ी बोली के प्रवर्तक कवियों में प्रमुख श्री मुकुटधर जी पाण्डेय का विशिष्ट रूप से सम्मान कर रहा है। मैं इन सबों के प्रति अपना सम्मान प्रकट करता हूँ और इस सम्मेलन की सफलता की कामना करता हूँ।

खंडवा
१८–१–६५

माखनलाल चतुर्वेदी

•

प्रिय महोदय,

आपका १ जनवरी, १९६५ का पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मध्यप्रदेश-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन २० और २१ जनवरी को जबलपुर में सम्पन्न होने जा रहा है और उसके अध्यक्ष श्री द्वारिकाप्रसाद जी मिश्र होंगे। मुझे सम्मेलन में उपस्थित होने से आनन्द होता किन्तु उन दिनों मैं कलकत्ते में रहूँगा जो पहले से निश्चित हो चुका है। अतः मुझे क्षमा करें।

श्री मिश्रजी की अध्यक्षता में प्रादेशिक सम्मेलन, मुझे विश्वास है, अवश्य ऐसा कदम उठायेगा जिससे हिन्दी-भाषी

राज्यों में हिन्दी अपना जन्मजात अधिकार प्राप्त कर सके और अन्य राज्यों के लिए भी अनुकरणीय हो। सम्मेलन की मैं पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

एफ १३।२ माडल टाउन, दिल्ली—९ आपका
दि.८–१–६५ वियोगी हरि

•

प्रिय महोदय,

आपका ता. ३० दिसम्बर का पत्र मिला। भाषा सम्मेलन की अध्यक्षता के लिये आपने जो आमंत्रण दिया उसको मैं स्वीकार सहर्ष करता, यदि ऐसा आमंत्रण एक महीने के पहले आ जाता।

इस बहाने मध्यप्रदेश के हिन्दी प्रेमी और साहित्य-स्वामियों का सहवास पाने का सौभाग्य भी मिलता। लेकिन जनवरी के ता. १८ से २३ तक गुजरात में एक-दो संस्थाओं को आने का वचन दे चुका हूँ और उन लोगों ने पूरी तैयारी भी की है, इसलिये मैं लाचार हूँ।

मैं देखता हूँ कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिये अब अच्छे दिन आ रहे हैं। आपके सम्मेलन को पूरी-पूरी सफलता मिलेगी ही।

'सन्निधि', राजघाट, नई दिल्ली—१ आपका
२–१–६५ काका कालेलकर

•

मैं सम्मेलन की सफलता चाहता हूँ। आशा है, मिश्र जी की अध्यक्षता में सम्मेलन इतना समर्थ और सत्ताशाली हो सकेगा कि साहित्यकारों के हितों की अधिक से अधिक रक्षा और उन्हें अधिक से अधिक सुविधा प्रदान कर सके।

१६–१–६५ जैनेन्द्रकुमार

•

प्रिय नर्मदा प्रसाद जी,

आपका १-१-६५ का कार्ड मिला। धन्यवाद। मुझे स्वयं इसका दुख है कि परिस्थितियों की विवशता के कारण मैं आपके आग्रह की रक्षा नहीं कर सका। आप मुझे जबलपुर में ही बसा लीजिये, फिर आप देखेंगे कि मैं जबलपुर के बाहर कहीं नहीं जाऊँगा। चूँकि भाग्य ने प्रयाग में बसा दिया है अब यहाँ से बाहर निकलना संभव नहीं हो रहा है।

....

अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ इस अवसर पर भेज रहा हूँ। आज के युग में हमें राष्ट्र भाषा ही नहीं बनानी है, राष्ट्रीय स्वरूप को भी संगठित करना है। हमारा दृष्टिकोण वैयक्तिक, सामाजिक जीवन के प्रति मध्ययुगीन ही रह गया है। हम मत मतांतरों में खोये हुए आज के युग की समस्याओं के प्रति बिल्कुल ही प्रबुद्ध नहीं हो पाये हैं। हिन्दी को हमें भाषा से भी अधिक राष्ट्रचेतना के रूप में ढालना है। उसके द्वारा अधिकारों को वाणी देनी है जो राष्ट्रीय एकता का पोषण करें, साथ ही जो हमारी उर्वर धरती के प्राणों में नयी शक्ति, नये संगठन, नयी प्रेरणा का संचार करें। हिन्दी भविष्य के विश्व जीवन की दर्पण बन सके।

१८ के. जी. मार्ग, इलाहाबाद

८-१-६५

आपका

सुमित्रानंदन पंत

●

प्रिय महोदय,

मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए आपका आमंत्रण मिला। एतदर्थ धन्यवाद।

मैं अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण अधिवेशन में उपस्थित होने के लिए असमर्थ हूँ।

अधिवेशन की मैं हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

चौपाटी रोड, बम्बई-७

५-१-६५

भवदीय

क० मा० मुन्शी

●

प्रिय महोदय,

हिन्दी जगत के सुप्रसिद्ध साहित्यिक और प्रतिष्ठित लोक-नेता श्री मिश्र जी आपके अधिवेशनाध्यक्ष हैं। उनके मार्ग-दर्शन में आपका यह अधिवेशन सफल होगा ऐसी मुझे उम्मीद है।

जय गुरु ।

मु० पो० गुरुकुंज, जि० अमरावती
स्थल-गोंदला
दि. १६-१-१९६५

राष्ट्रसंत श्री तुकड़ो जी महाराज

महोदय,

आपका पत्र दिनाँक ९-१-६५ प्राप्त हुआ। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आगामी अधिवेशन २०-२१ जनवरी को जबलपुर में विद्वद्वर पं० द्वारका-प्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में सम्पन्न हो रहा है ।

मैं आपके आयोजन की सफलता के लिए शुभकामना करता हूँ ।

भवदीय
नगेन्द्र

१६, कैवेलरी लाइंस, दिल्ली–७
दि० १४–१–६५

मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जबलपुर अधिवेशन की हृदय से सफलता चाहता हूँ। ईश्वर से प्रार्थना है कि सम्मेलन के द्वारा मध्य प्रदेश में हिन्दी का नया जागरण हो। विशेषत: जनपदीय शब्दावली और लोकवार्ता संबन्धी सामग्री का जो विशाल भण्डार मध्यप्रदेश के विबिध अञ्चलों में है उसका संग्रह समय रहते किया जाना चाहिये ।

वासुदेव शरण

वाराणसी

प्रिय महोदय,

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता मिली कि मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन आदरणीय पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में हो रहा है। संविधान ने हिन्दी को जो राष्ट्रीय प्रतिष्ठा दी है उसको बनाये रखने में मध्यप्रदेश को भी बहुत बड़ा काम करना है। मैं अधिवेशन की सफलता चाहता हूँ।

२, किंग जार्ज एवेन्यू, पटना
५–१–६५

आपका
लक्ष्मीनारायण सुधांशु

●

बन्धुवर,

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन के लिए आपका कृपापूर्ण निमंत्रण मिला। आभारी हूँ। दुःख है कि सम्मिलित होने में असमर्थ हूँ—अपरिहार्य व्यस्तताओं के कारण। अधिवेशन की सफलता की कामना पूरे मन से करता हूँ। २६ जनवरी १९६५ के ठीक पहले होनेवाले इस अधिवेशन का विशेष महत्व है।

अमरावती
६, टैगोरनगर, इलाहाबाद–२
१८–१–६५

शुभैषी
बालकृष्ण राव

●

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन की पूर्ण सफलता के लिये मेरी आन्तरिक शुभकामना स्वीकार कीजिये। राजनीति के इस नीरस युग में ऐसे ही साहित्य सम्मेलनों से नव-जीवन का संचार हो सकेगा।

वाराणसी उ० प्र०
१३–१–६५

शुभेच्छु
शांतिप्रिय द्विवेदी

●

प्रिय महोदय,

आपका ७ जनवरी का पत्र मिला। यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री 'कृष्णायनकार' पं० द्वारका-प्रसाद मिश्र जैसे सारथी की अध्यक्षता में दि० २०-२१ जनवरी को जबलपुर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन होने जा रहा है।... ... मैं दिल्ली में अत्यधिक कार्यव्यस्त होने से आ नहीं सकूँगा पर स्व० हृदय, नवीन और मुक्तिबोध की यह भूमि मालव और महाकोशल की नयी-पुरानी सभी श्रेष्ठ प्रतिभाओं को नहीं भूलेगी ऐसा विश्वास है।

१०२ रवीन्द्र नगर, नई दिल्ली—११ सप्रेम
१०—१—६५ **प्रभाकर माचवे**

●

मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन आगामी २०, २१ जनवरी को होने जा रहा है। इसकी मुझे प्रसन्नता है। हिन्दी के प्रचार के लिए साहित्य सम्मेलन ने जो सेवा की है उससे सभी हिन्दी प्रेमी अच्छी तरह परिचित हैं। भाषा तथा साहित्य की सेवा तभी पुनीत कार्य है जब वह पारस्परिक सौहार्द्र तथा ऐक्य को बढ़ावे। मैं आशा करती हूँ साहित्य सम्मेलन अपने कार्य में सदैव इस बात का ध्यान रक्खेगा।

मैं इस अधिवेशन की सफलता की कामना करती हूँ।

लखनऊ,
७ जनवरी, १९६५ **सुचेता कृपलानी**

●

प्रिय भाई,

जय हिन्दी—जय नागरी । ......

सम्मेलन के जबलपुरीय समारोह के सफलतापूर्वक संपन्न होने के लिये आपने और आपके संगी साथी सहयोगियों ने जो भागीरथ प्रयत्न किये उससे सारे विशाल मध्यप्रदेश को एक नई चेतना मिली है ।......

मध्यप्रदेश के महान लौहपुरुष और मुख्यमंत्री श्रद्धेय पंडित द्वारका प्रसाद मिश्र जी आपको अध्यक्ष रूप में मिले हैं, यह सोना और सुगंध जैसा सुयोग है ।......

वहाँ मैं उपस्थित नहीं हो पा रहा हूँ इसका मुझे अत्यंत खेद है । ......मेरा दिल व दिमाग सदैव आप सबके साथ शुभकामनाओं सहित रहा है, रहेगा ।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर
१६—१—६५

आपका
हृषीकेश शर्मा

•

बंधुवर,

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन माननीय पं० द्वारका प्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में दिनाँक २० और २१ जनवरी को संपन्न होने जा रहा है, यह जान कर प्रसन्नता हुई । निमंत्रण के लिए धन्यवाद । मुझे विश्वास है कि सम्मेलन उत्तरोत्तर विकास करेगा । आयोजन की सफलता मनाता हूँ । मिश्र-जी की अध्यक्षता के कारण अधिवेशन चिरस्मरणीय बन जायेगा । मेरी शुभ कामनायें स्वीकार करें ।

(नागपुर विश्वविद्यालय)
रामदास पेठ, नागपुर—२
८—१—६५

सस्नेह
कमलाकांत पाठक

•

बंधुवर श्री खरे जी,

माननीय मुख्यमंत्री पं० द्वारिकाप्रसाद जी मिश्र जैसे महान् प्रतिभा-सम्पन्न और कर्मशील सभापति के नेतृत्व में मध्य-प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन द्वारा इस विशाल विशुद्ध हिन्दी-प्रदेश के राष्ट्रभाषा के महत्वपूर्ण साहित्य-भाण्डार की समुचित सुरक्षा होगी और उनकी सर्वांगीण उन्नति होगी। साथ ही राष्ट्रभाषा के साहित्य-साधकों को समुचित सुविधा प्राप्त होगी, जिससे वे साधक श्रेष्ठ साहित्य का सृजन करने में सफल हो सकेंगे। सभी महानुभावों से यथायोग्य, प्रणामादि निवेदन करने का कष्ट करें। विशेष शुभ।

गाँधीनगर, सागर (म०प्र०)
२०-१-६५

शुभेच्छु
लोकनाथ सिलाकारी

●

प्रिय भाई खरेजी,

मध्य-प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन का आमंत्रण मिला। आभारी हूँ। अधिवेशन की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ लीजिए।

नई दिल्ली
१८-१-६५

सस्नेह आपका
राजेन्द्र अवस्थी

●

प्रियवर,

२०, २१ जनवरी को होने वाले म० प्र० हि० सा० स० के तृतीय अधिवेशन का निमंत्रण मिला। आभारी हूँ।......कार्य-क्रम की सफलता हृदय से चाहता हूँ।...

रामजी द्वार, मथुरा
१८-१-६५

विनीत
बरसानेलाल चतुर्वेदी

●

श्रीमान् नर्मदा प्रसाद जी खरे,

स्वागताध्यक्ष म० प्र० हिन्दी सहित्य सम्मेलन, जबलपुर,

मुझे यह जानकर अत्यंत हर्ष हुआ कि इस वर्ष जबलपुर को मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन मनाने का गौरव प्राप्त हुआ। आपने इस सुखद एवं पुण्य अवसर पर मुझे स्मरण कर जो निमंत्रित किया उसके लिये मैं आप सब का अत्यंत आभारी हूँ। किंतु शारीरिक असमर्थता के फलस्वरूप मैं इस सम्मेलन में भाग लेने एवं हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के समागम में उनके सत्संग एवं संसर्ग से वंचित रहूँगा जिसका मुझे अत्यंत खेद है।

इस सम्मेलन की सफलता के लिये मैं अपनी हार्दिक शुभकामनायें भेज रहा हूँ। मुझे भरोसा है कि हिन्दी भाषा के विकास में जो कुछ कठिनाइयाँ आ रही हैं वे धीरे-धीरे निकल जायँगी और हिन्दी भाषा देश में अपना उचित स्थान पा सकेगी।

८६८, राईट टाऊन, जबलपुर
२०–१–६५

भवदीय
लज्जा शंकर झा

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन

(संक्षिप्त इतिहास) —श्रीबाल पाण्डेय

(राजनैतिक सीमा परिवर्तन के पूर्व मध्यप्रदेश जिसमें कि बरार राज्य भी शामिल था उन दिनों की स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत विवरण सम्मेलन के सन्दर्भ में है ।)

मध्यप्रदेश में साहित्यिक चेतना का विकास काल १६०३ से प्रारम्भ होता है। उन्हीं दिनों इस प्रदेश में स्वर्गीय पं० माधवराव सप्रे ने "छत्तीसगढ़ मित्र" नामक हिन्दी मासिक का प्रकाशन प्रारम्भ कर प्रदेश के साहित्य साधकों को एकसूत्र में बाँधने का विनम्र उपक्रम प्रारम्भ किया। उन्हीं दिनों राष्ट्र को राजनैतिक एकसूत्रता में बाँधने के लिये हिन्दी को राष्ट्र भाषा का पद प्रदान करने की दिशा में भी प्रयत्न प्रारम्भ होने लगे थे और अन्य प्रान्तों में भी इस सम्बन्ध में पहल होना शुरू हो गई थी। अखिल भारतीय स्तर पर महामना पं० मदनमोहन मालवीय ने हिन्दी भाषा के साहित्य सेवियों को सन् १६१० में एक अखिल भारतीय स्तर पर मंच पर लाने की कल्पना की और हिन्दी को नई दिशा देने का संकल्प किया। परिणामस्वरूप अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जन्म हुआ। इस सम्मेलन में बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन जैसे मूर्धन्य मनीषियों का योगदान बड़ा लाभप्रद सिद्ध हुआ और अन्ततः प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन की स्थापना होने का मार्ग प्रशस्त हुआ। टण्डन जी का मार्गदर्शन सभी प्रान्तीय सम्मेलनों के लिये प्रेरणाप्रद सिद्ध हुआ।

सम्मेलन का जन्म और प्रथम अधिवेशन (रायपुर)

सप्तम अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम तथा महत्व-पूर्ण अधिवेशन मध्यप्रदेश में सन् १६१६ में बिहार के पं० रामावतार शर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था। इस अधिवेशन से प्रभावित होकर ही मध्यप्रदेश हिन्दी सम्मेलन की आवश्यकता अनुभव की गई थी। यद्यपि पं० विष्णुदत्त शुक्ल की प्रेरणा एवं पं० माधवराव सप्रे व पं० रविशंकर शुक्ल के प्रयास से रायपुर में सन् १६१५ में ही इस का स्वरूप निर्धारित हो गया था परन्तु

प्रदेश में प्रान्तीय स्तर का प्रथम सम्मेलन सन् १९१८ में ही रायपुर में हो सका। सन् १९१८ के ३० और ३१ मार्च को होने वाले इस प्रथम मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की अध्यक्षता छिन्दवाड़ा निवासी बैरिस्टर प्यारेलाल मिश्र ने की थी। इन दिनों प्रादेशिक भाषाओं और साहित्यिक भाषा का विवाद चल रहा था। सम्मेलन के प्रथम अध्यक्ष ने इस उलझन भरे प्रश्न को बड़ी शालीनता से हल किया तथा हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाकर उसके साहित्य को समृद्ध करने की अपील की। साथ ही खड़ी बोली और ब्रजभाषा के महत्व को भी प्रतिपादित किया।

द्वितीय अधिवेशन (खंडवा)

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का द्वितीय अधिवेशन १८, १९ एवं २० अप्रेल सन् १९१९ को खण्डवा में पं० विष्णुदत्त शुक्ल की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में हिन्दी को सार्वजनीन भाषा बनाने के उपायों पर विचार विनिमय हुआ, तथा हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति सुधारने की ओर ध्यानाकृष्ट किया गया।

तृतीय अधिवेशन (सागर)

१७, १८ और १९ मई सन् १९२० में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन सागर में आयोजित हुआ। इसके अध्यक्ष बाबू गोविन्द दास मनोनीत हुए तथा अधिवेशन के स्वागत मंत्री श्री केदारनाथ-रोहण थे। इस सम्मेलन में कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये। प्रदेश के प्रत्येक नगर में हिन्दी पुस्तकालय स्थापित करने और हिन्दी लेखकों की सूची बनाने की दिशा में निश्चय किया गया। इस अधिवेशन में हिन्दी पुस्तकों की प्रदर्शनी भी आयोजित की गई थी जिसका संयोजन पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ने किया था। इस प्रदर्शनी में प्राप्त सभी पुस्तकों को पुस्तकालय के हेतु प्राप्त कर लिया गया तथा यह पुस्तकालय जबलपुर के बल्देवबाग में स्थापित किया गया। इस सम्मेलन में प्रथम बार स्थायी समिति का गठन किया गया तथा उसका कार्यालय जबलपुर में रखने का निश्चय किया गया।

चतुर्थ अधिवेशन (जबलपुर)

जबलपुर में म० प्र० हि० सा० सम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन १२, १३ और १४ मई सन १९२१ में पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष रायसाहब पं० रघुवरप्रसाद

द्विवेदी थे । इस अधिवेशन में लगभग १५ प्रस्ताव पारित किये गये । जबलपुर में यह अधिवेशन पं० माखनलाल चतुर्वेदी के सुझाव पर हुआ था ।

पंचम अधिवेशन (नागपुर)

४ मार्च १९२२ को मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का पंचम अधिवेशन नागपुर में पं० रविशंकर शुक्ल की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इसके स्वागताध्यक्ष नागपुर के गोस्वामी रामकृष्ण पुरी महाराज थे । इस सम्मेलन में ११ प्रस्ताव पारित किये गये । एक प्रस्ताव द्वारा प्रांतीय स्तर पर साहित्य समालोचक समिति का गठन किया गया जिसमें रायसाहब पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी, पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय तथा पं० गोवर्धन शर्मा थे और इस समिति के संयोजक प्रसिद्ध वैयाकरण पं० कामताप्रसाद गुरु थे । इसी अधिवेशन में एक प्रस्ताव के अनुसार संस्था के नाम में परिवर्तन किया गया और उसका नाम मध्यप्रदेश और बरार साहित्य सम्मेलन रखा गया ।

षष्ठम अधिवेशन (रायपुर)

पंचम अधिवेशन के बाद ८ वर्षों तक मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कोई अधिवेशन आयोजित नहीं हो सका । सन १९३० की १६ अप्रेल को पं० माखनलाल चतुर्वेदी की अध्यक्षता में सम्मेलन का षष्ठम अधिवेशन रायपुर में आयोजित हुआ । इसके स्वागताध्यक्ष थे पं० रामदयाल तिवारी । इस सम्मेलन की मुख्य उपलब्धि थी नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा हिन्दी विषय को उच्च अध्ययन के लिये नियुक्त करना तथा उच्च कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों के लिये गणमान्य साहित्यकारों की समिति का गठन ।

सप्तम अधिवेशन (सागर)

११ जून १९३१ को पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में आयोजित किया गया । उन दिनों राजनैतिक हलचलों से समूचे प्रदेश में नयी जागृति उद्भूत हो रही थी अतएव सागर के इस अधिवेशन की कोई उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं रही ।

अष्टम अधिवेशन (रायपुर)

सन १९३१ के बाद पुनः सम्मेलन में ७ वर्षों का अन्तराल आया और इस बीच कोई अधिवेशन नहीं हो सका । अन्ततः सन १९३९ में रायगढ़ नरेश राजा चक्रधरसिंह की अध्यक्षता में अष्टम अधिवेशन रायपुर में हुआ और सम्मेलन को पुनः जीवन मिला ।

नवम अधिवेशन (रायपुर)

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का नवम् अधिवेशन श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह की अध्यक्षता में पुनः रायपुर में तीसरी बार सन् १९४१ में सम्पन्न हुआ।

दशम अधिवेशन (सागर)

सागर को दूसरी बार सम्मेलन के आयोजित कराने का गौरव मिला सन् १९४१ में। इस सम्मेलन के अध्यक्ष थे पं० बल्देव प्रसाद मिश्र।

ग्यारहवाँ अधिवेशन (अकोला)

१४ दिसम्बर १९४७ को, पुनः ६ वर्षों के गत्यावरोध के कारण स्थगित सम्मेलन का अधिवेशन बाबू गोविंददास की अध्यक्षता में अकोला में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर सम्मेलन का स्थायी कार्यालय प्राचीन मध्यप्रदेश की राजधानी नागपुर में रखे जाने की घोषणा हुई।

तेरहवाँ अधिवेशन (राजनाँदगाँव)

श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन की अध्यक्षता में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का तेरहवाँ अधिवेशन राजनाँदगाँव में आयोजित हुआ। इस अधिवेशन में सम्मेलन द्वारा कुछ प्रकाशन कार्य लिये गये जिनमें प्रमुख पं० माधवराव सप्रे की जीवनी और नक्षत्र का प्रकाशन उल्लेखनीय है।

चौदहवाँ अधिवेशन (जगदलपुर)

सन् १९५० में सम्मेलन का चौदहवाँ अधिवेशन जगदलपुर में बाबू पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की अध्यक्षता में हुआ। इस अवसर पर पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र, आचार्य क्षिति मोहन सेन डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० बाबूराम सक्सेना आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय थी।

पन्द्रहवाँ अधिवेशन (गोंदिया)

सम्मेलन का पन्द्रहवाँ अधिवेशन ५ अक्टूबर सन् १९५२ को श्री ब्रिजलाल बियाणी की अध्यक्षता में गोंदिया में आयोजित किया गया। इस अवसर पर सम्मेलन के प्रधानमंत्री श्री रामगोपाल माहेश्वरी नियुक्त हुए तथा इनके और प्रयागदत्त शुक्ल के अनवरत प्रयासों के कारण नागपुर में हिन्दी मोर भवन स्थापित हुआ। इसी सम्मेलन में प्रथम बार प्रदेश के ख्याति-प्राप्त विद्वानों को सम्मानित किया गया और उनका अभिनन्दन किया गया।

सोलहवाँ अधिवेशन (दुर्ग)

सम्मेलन का १६ वाँ अधिवेशन ११ और १२ अक्टूबर को १९५३ में दुर्ग में सम्पन्न हुआ।

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का नया रूप
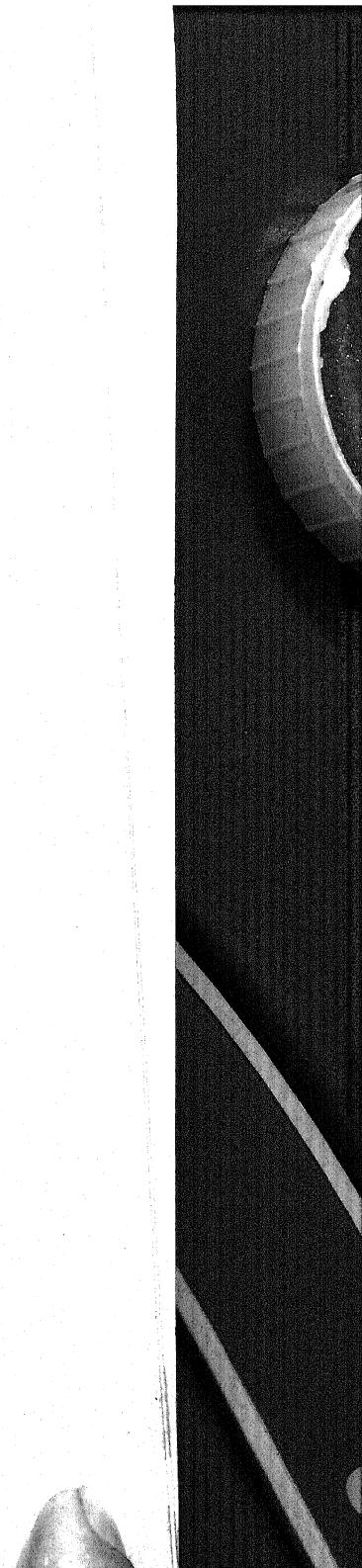
१ नवम्बर १९५५ को राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों में अनेक राज्यों की रचना भाषावार प्रान्त बनाने के आधार पर हुई और उसका व्यापक प्रभाव मध्यप्रदेश पर भी पड़ा। मध्यप्रदेश में मध्यभारत, विन्ध्यप्रदेश विलीन हुए और नागपुर का क्षेत्र प्रदेश से पृथक हो गया। विन्ध्यप्रदेश और मध्यभारत में साहित्य सम्मेलन प्रान्तीय स्तर पर गठित थे और मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अनुरूप ही इनका कार्य-संचालन एवं आयोजन होता था। नये मध्यप्रदेश की रचना के बाद भी इनकी कार्यप्रणाली एवं अस्तित्व में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। फिर भी नये मध्यप्रदेश में म० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन को नया रूप दिया गया और पिछले सम्मेलनों को इतिश्री मान नये रूप में इसका गठन हुआ।

नये मध्यप्रदेश के प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन भोपाल में सन् १९५८ में पं० कुंजीलाल दुबे की अध्यक्षता में आयोजित हुआ जिसके स्वागताध्यक्ष थे डॉ.कैलाशनाथ काटजू तथा सम्मेलन का उद्घाटन किया था पं० जवाहरलाल नेहरू ने। इसका द्वितीय अधिवेशन सन् १९६० में रायपुर में हुआ डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में। और ५ वर्षों के अन्तराल के बाद इसका तृतीय अधिवेशन जबलपुर में पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र की अध्यक्षता में २० और २१ जनवरी सन १९६५ में आयोजित किया गया।
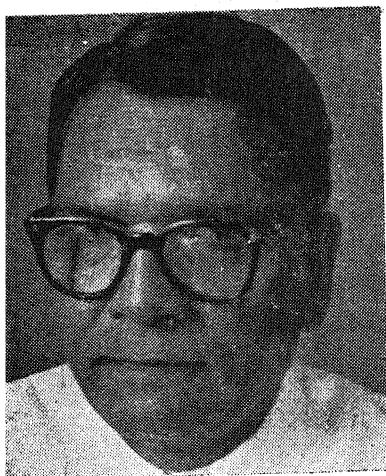
जबलपुर में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन सम्पन्न होने के पूर्व लगभग एक वर्ष तक विवादग्रस्त स्थिति में रहा। इस अधिवेशन की स्वागत-समिति का गठन यद्यपि सन १९६४ में हो गया था और प्रसिद्ध कवि एव कथाकार श्री नर्मदा प्रसाद खरे इसके स्वागताध्यक्ष मनोनीत हो गये थे परन्तु कतिपय कारणों से लगभग एक वर्ष की अवधि केवल विवाद में बीती। ऐसा अनुभव होने लगा कि जबलपुर में यह अधि-वेशन न होगा फिर भी साहित्यकारों के प्रयास से विवाद-ग्रस्त स्थिति टली, अन्ततः जबलपुर को अनेक वर्षों के बाद पुनः यह अधिवेशन कराने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस अधिवेशन की स्वागत-समिति में लगभग ११ सौ सदस्यों का उल्लेखनीय योगदान रहा और स्वागताध्यक्ष श्री नर्मदा प्रसाद खरे की क्रियाशीलता ने अपनी अटूट लगन एवं निष्ठा से इसे सफलता प्रदान की।

●
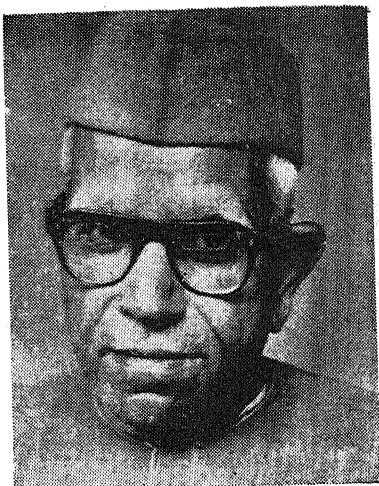
स्वगताध्यक्ष : नर्मदा प्रसाद खरे
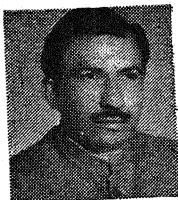
उपाध्यक्ष

डा० उदय नारायण तिवारी
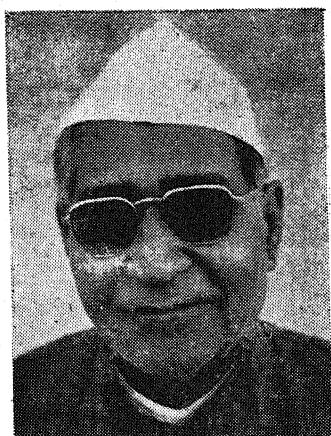
पं० कालिका प्रसाद दीक्षित

पं० भगवतीधर वाजपेयी
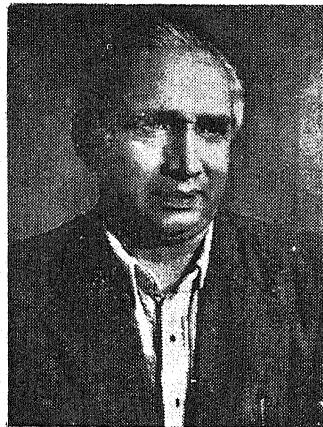
श्री पन्नालाल श्रीवस्तव

कोषाध्यक्ष : श्री मणीभाई पटेल

मंत्रीद्वय

श्री नत्थूलाल सराफ

श्री राजेन्द्र नाथ वासुदेव
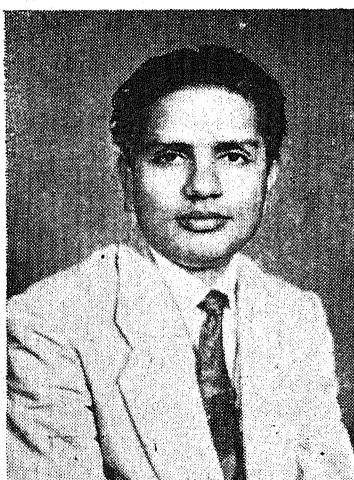
संयुक्त मंत्री
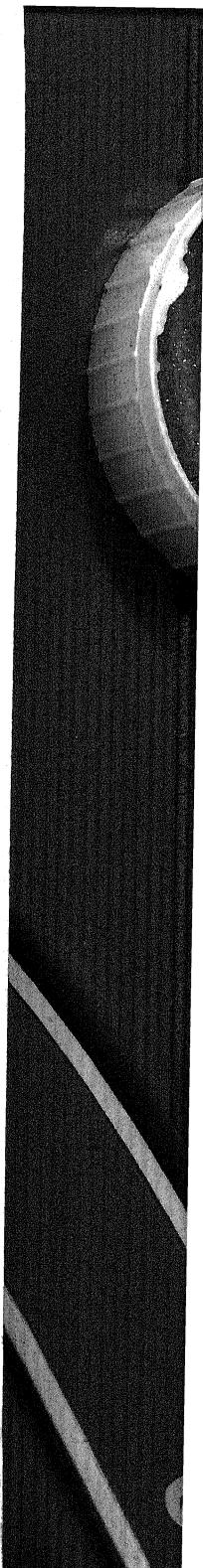
श्री श्रीबाल पाण्डेय

श्री मोहन शशि
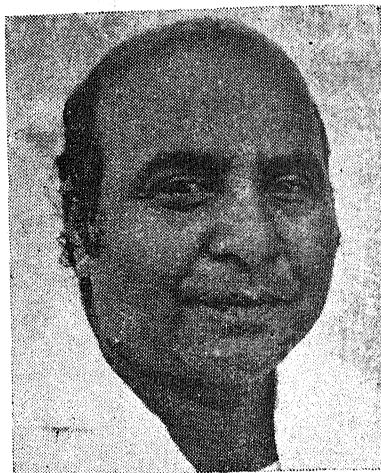
श्री हनुमान वर्मा
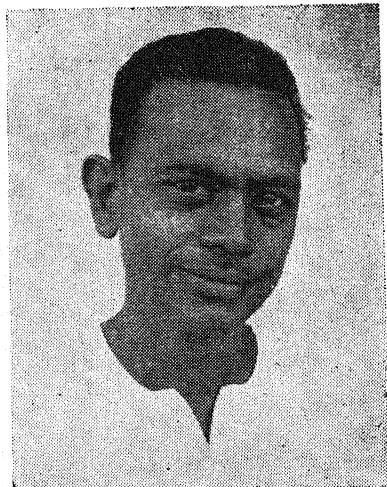
श्री हरिशंकर परसाई

संयोजक : साहित्य परिषद
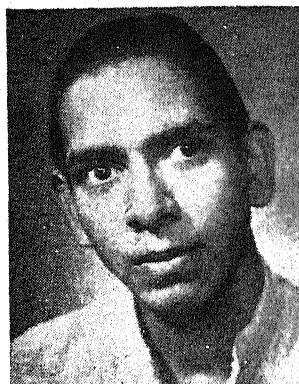
श्री डी० व्ही० राव

संयोजक : सांस्कृतिक कार्यक्रम
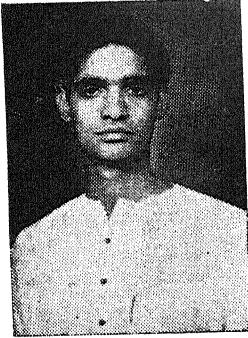
प्रचार-संयोजक
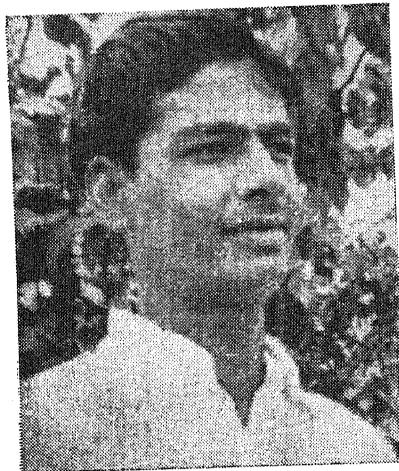
श्री हीरालाल गुप्त

श्री निर्मल नारद
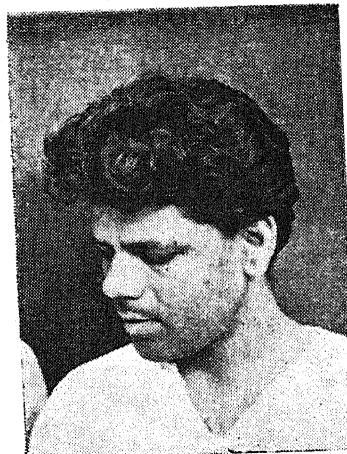
श्री रामशंकर मिश्र

संयोजक : कवि सम्मेलन
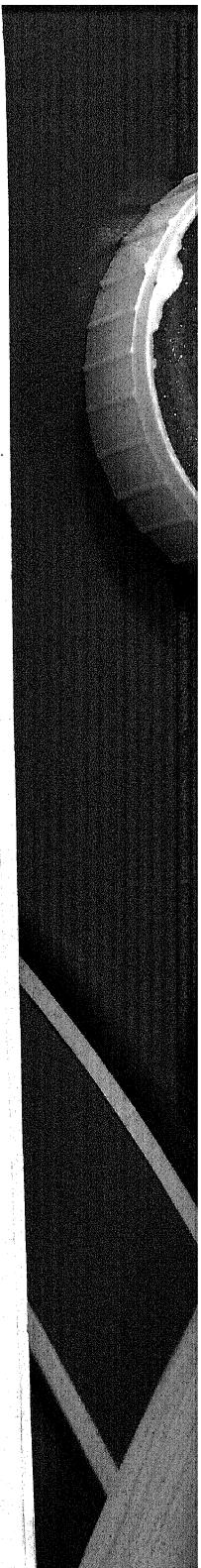
श्री हरक चन्द्र जैन

संयोजक : भोजन व आवास
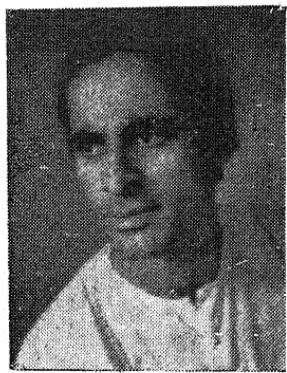
श्री ललितकुमार श्रीवस्तव

संयोजक : यातायात

श्री कामता सागर

प्रभारी संयोजक कला प्रदर्शनी

सहयोगी
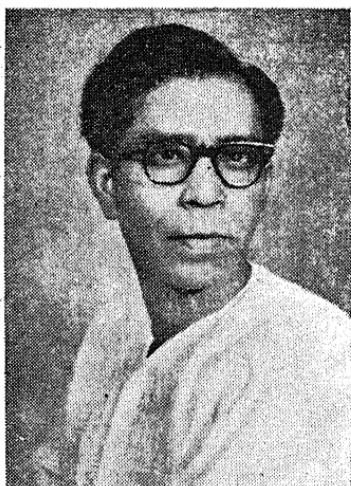
श्री नरसप्पा अल्वा
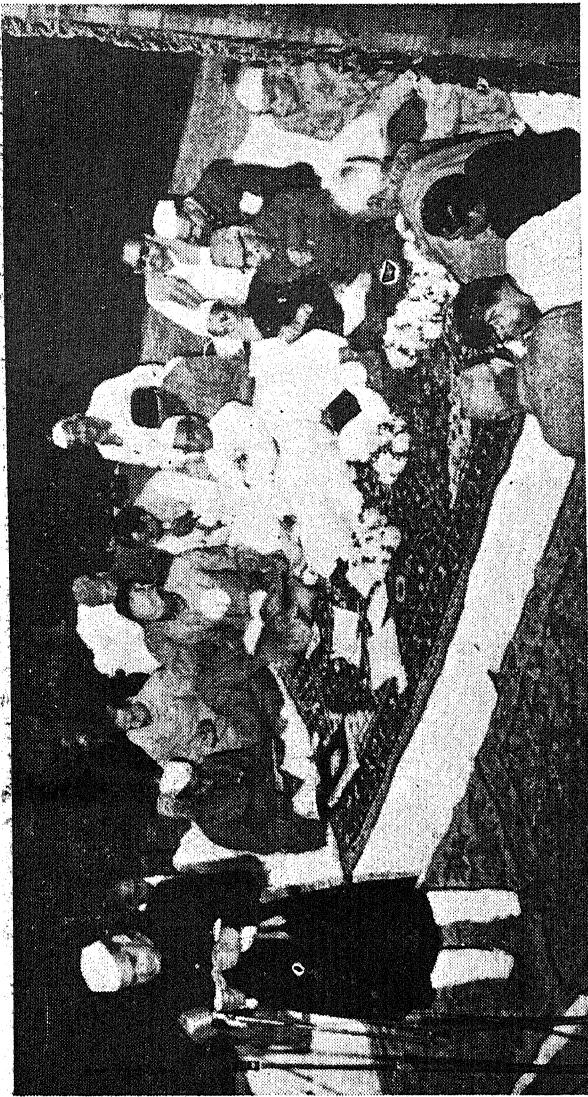
श्री राजकुमार सुमित्र

श्री जवाहरलाल जैन
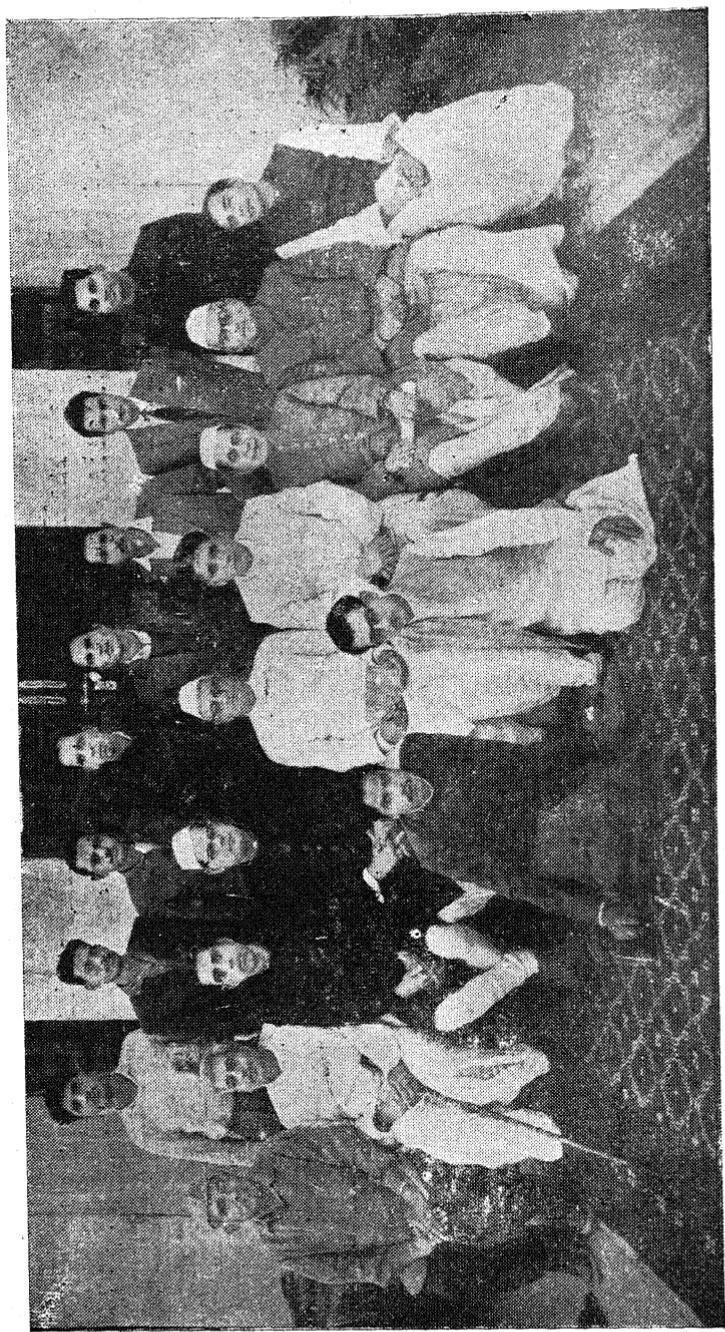
श्री राव. वी. एम.

अधिवेशन : स्वागताध्यक्ष श्री नर्मदा प्रसाद खरे स्वागत-भाषण देते हुए।

मंचासीन हैं : सर्वश्री व्यौहार राजेन्द्रसिंह, डा० रघुवीर सिंह, डा० धीरेन्द्र वर्मा (उद्घाटनकर्ता) पं० द्वारका प्रसाद मिश्र (अध्यक्ष) डा० बल्देव प्रसाद मिश्र, डा० बाबूराम सक्सेना, पं० कुंजीलाल दुबे, पं० मुकुटधर पाण्डेय आदि।

कुर्सी पर आसीन : सर्वश्री नत्थूलाल सराफ, गुलाबचंद गुप्त, पन्नालाल श्रीवास्तव, नर्मदा प्रसाद खरे, पं. द्वारका प्रसाद मिश्र, डा० शिवमंगलसिंह सुमन, व्यौहार राजेन्द्रसिंह, डा० राजबली पाण्डेय और मायाराम सुरजन
पीछे खड़े हुए : सर्वश्री कृष्णबिहारी पाण्डेय, हरकचन्द्र जैन, हीरालाल गुप्त, निर्मल नारद, श्रीबाल पाण्डेय, ललितकुमार श्रीवस्तव, विजय ठाकुर, जवाहरलाल जैन। **सामने बैठे हुए :** श्री मोहन शशि और राजकुमार सुमित्र

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलन तृतीय अधिवेशन जबलपुर

[२०-१-६५]

स्वागत-भाषण : नर्मदा प्रसाद खरे

आदरणीय अध्यक्ष जी, प्रतिनिधि गण, सुधीवृन्द, देवियो और सज्जनो !

आज यहाँ, आप सब साहित्य-साधकों का हार्दिक स्वागत करते हुए, हम अत्यन्त आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। जहाँ लब्धप्रतिष्ठ विज्ञों, रस-सिद्ध कवीश्वरों तथा श्रेष्ठ साहित्यकारों का समागम होता है, वह स्थान तीर्थ बन जाता है, और वह दिन पुण्य पर्व की भाँति पुनीत हो जाता है। ऐसे पुनीत स्थल और शुभ दिवस में, आप सब महानुभावों का सादर तथा सभक्ति स्वागत करने का जो अवसर मुझे प्राप्त हुआ है, उसे मैं अपने किसी अनजाने पुण्य का उदय मानता हूँ।

यद्यपि आप के ज्ञान की कोई सीमा नहीं है, तथापि ऐसे शुभ अवसरों पर अपने नगर तथा आसपास के इतिहास, साहित्य, संस्कृति का कुछ परिचय देने की परम्परा चली आ रही है। यद्यपि यह स्थान और यहाँ के साहित्यिक आप के भी उतने ही हैं, जितने मेरे, तथापि आतिथेय के नाते मैं उनसे अधिक संबंध जोड़ रहा हूँ।

भारतीय परम्परा की कई अविस्मरणीय स्मृतियाँ जबलपुर के साथ संबंधित हैं। नर्मदा की उत्पत्ति और रेवा-खण्ड के विकास में भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण शृंखलाएँ संघटित हैं। त्रिपुर के विध्वंस के बाद भगवान शिव ने यहीं सर्वलोक के लिए शैव धर्म की प्रतिष्ठा की थी। चेदि-जनपद का दक्षिण-शीर्ष भाग त्रिपुरि-जावालिपुर से सुशोभित था। चेदि-वंश के अनेक राजा भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध हुए। यह त्रिपुरी मध्य-युग में कलचुरि-हैहयों की राजधानी थी, जिनका प्रताप और यश सम्पूर्ण भारत में

व्याप्त था। उन्हीं के प्रश्रय में राजशेखर ने अपने प्रसिद्ध नाटकों और काव्य-मीमांसा की रचना की थी। इस प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल से यहाँ की जनता और जन-नायक धर्म, संस्कृति, साहित्य के उपासक रहे हैं। विश्वविद्यालय स्थापित हो जाने से हमारे नगर को प्रचुर शैक्षणिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक गौरव प्राप्त हुआ है। परन्तु कदाचित यह प्रथम विश्वविद्यालय नहीं है। रायबहादुर डा० हीरालाल ने, तत्कालीन राबर्टसन कालेज में, व्याख्यान देते हुए कहा था कि त्रिपुरी में एक विश्वविद्यालय निर्मित था जिस में छः हजार विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। पं० सरस्वती प्रसाद जी चतुर्वेदी ने भी शुक्ल-अभिनंदन ग्रंथ में लिखा है: 'त्रिपुरी के निकट गोलकीमठ के आचार्य सोमशंभु एक प्रकाण्ड दार्शनिक और जन-नेता थे। × × ×। इस गोलकीमठ में अनेक विद्यालय थे, जिनमें विविध शास्त्रों के विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा, भोजन, वस्त्र आदि दिये जाते थे।'

उसी ग्रंथ में डॉ० हीरालाल जी जैन का लेख है, जो म० प्र० की पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश-साहित्यों की सेवाओं का सर्वेक्षण करता है। उनका निष्कर्ष है कि म० प्र० ने इन साहित्यों की यथा समय पर्याप्त सेवा की। जबलपुर में एक कला-भवन का निर्माण हो रहा है, और जो सामग्री इकट्ठी हो गई है उससे प्रगट है कि तत्कालीन कला पर जैन तथा बौद्ध धर्मों का पर्याप्त प्रभाव था। यही धारणा चौसठ योगिनियों की मूर्तियाँ देखने से भी उत्पन्न होती है।

हिन्दी की उत्पत्ति 'वीरगाथा' काल से मानी गई है। वीर-रस एक प्रधान तथा स्वाभाविक र है। कोई महत्वपूर्ण ग्रंथ तो नहीं लिखा गया, पर राजा अमान, रानी दुर्गावती आदि के वीरत्व की प्रशंसा लोकगीतों द्वारा यथा समय होती रही और धर्मवीर हरदौल लाला के गीत तो आज भी हमारे ग्राम-ग्राम में गाये जाते हैं। अनेक अन्य वीर काव्य भी प्राप्य हैं: 'भीष्मयुद्ध', 'पांडव-विजय' आदि।

भक्ति-गाथा-काल का जबलपुर एक केन्द्रीय स्थल था। गढ़ा को स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्य के निवास-स्थान बनने का गौरव प्राप्त हुआ। उनके पुत्र आचार्य विट्ठलदास के शिष्य, कुंभनदास, गढ़ा के निवासी थे, जिनका गौरवपूर्ण स्थान अष्ट छाप के कवियों में है। कदाचित यहीं से उन्हें अकबर

महान् के आमंत्रण पर फतेहपुर सीकरी जाना पड़ा हो और ये पंक्तियाँ कहने के लिये लाचार होना पड़ा हो।

"संतन सीकरी कौने काम ?
आवत-जात पन्हैयाँ टूटीं, बिसरि गयो हरि नाम ॥"

इनके पुत्र चतुर्भुज दास थे। भक्ति गाथा-काल में यहाँ का क्या महत्त्व था, केवल इतने से प्रगट हो जाता है कि नाभादास ने 'भक्तमाल' में लिखा है—'हरिबंश भजन-बल चतुर्भुज गोंड देश तीरथ कियो।'

भक्तिगाथा-काल के अंतर्गत निर्गुण और प्रेममार्गी धाराएँ हैं। हमारे आसपास कबीरदास की मुख्य गद्दियाँ हैं—कवर्धा (कबीरधाम), धमधा (धर्मधाम), कबीर चौरा (अमरकंटक)। तब हमारे यहाँ उनका कितना प्रभाव न पड़ा होगा ? आज भी हमारे बीच प्रचुर संख्या में कबीरपंथी भाई हैं। प्रेममार्गी धारा को सूफी मार्ग कहा गया है। राजकुमार-राजकुमारी आत्मा-परमात्मा के प्रतीक माने गये हैं। इस पर टीका-टिप्पणी न करके केवल यह कहना है कि कटनी के पास बिलहरी के विशुद्ध प्रेमाख्यान, 'काम-कन्दला-माधवानल' को महाकवि आलम ने कविताबद्ध कर हमें इस साहित्य में सम्मिलित कर लिया है। डॉ० रामकुमार जी वर्मा ने इसी आख्यान पर एक नाटक भी लिखा है।

भक्तिगाथा के बाद रीतिकालीन काव्य का समय सन् १७०० से १६०० तक माना गया है। श्रृंगार रसराज है। उसमें कब रचना नहीं हुई ? इस काल में प्रधानतः हुई। घर-घर हुई और बड़ी सीमा तक असंयमित भी। इसका कारण मुसलमानी आक्रमण की प्रतिक्रिया कहा गया है। अरबी, फारसी और बाद में उर्दू का गजलवाद प्रधानतः श्रृंगारात्मक है। उसका भी असर हम पर हुआ और भक्ति तथा नीति-काव्य लिखने के लिए भी हमने गजल अपनाई। जबलपुर गोंड़राज्य के बाद मुस्लिम शासन में आ गया था। यहाँ फारसी-उर्दू का प्रचार हुआ। 'निजामी' आदि कुछ पुराने शायरों के नाम सुने जाते हैं। हिन्दी में रीतिकालीन कविता तो हुई है, पर यहाँ कोई नामी कवि नहीं हुआ। नामी कवि पद्माकर आदि हिन्दू राजधानी सागर में हुए। उनके शिष्य सभी ओर फैल गये, यहाँ भी। भारतेन्दु-काल के कवि प्रधानतः ब्रज-अवधी में कविता करते थे, और श्रृंगार-रस की भी। इस प्रकार आगे

ठाकुर जगमोहनसिंह, भानु कवि आदि पर अन्य महाकवियों के अतिरिक्त पद्माकर का भी प्रभाव पड़ा हो तो आश्चर्य क्या ?

यद्यपि हिन्दी का आधुनिक काल लगभग सन् १८८५ में राजा राममोहन राय ने प्रारम्भ कर दिया था, तथापि भारतेन्दु-काल सन् १८६५ में प्रारम्भ हुआ माना जाता है, जब उन्होंने १५—१६ वर्ष की आयु में हिन्दी का झंडा उठाया। भारतेन्दु-काल के जबलपुर के प्रधान हिन्दी-सेवी भारतेन्दु जी के मित्र, ठाकुर जगमोहन सिंह, पं० विनायक राव, जगन्नाथप्रसाद जी 'भानु', सैयद अमीर अली 'मीर', राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', श्री सुखराम चौबे 'गुणाकर' आदि हैं। या तो इन सबने जबलपुर तथा इसके आस-पास निवास किया है, या इनका हमारे नगर से, जिले से, निकट सम्बन्ध रहा है। इनकी देनगियों पर विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे स्थायी सम्पत्ति के रूप में सर्वविदित हैं या सर्वसुलभ हैं।

इस युग के एक ऐसे महान व्यक्तित्व की चर्चा शेष रह गई है, जिसके पूज्य चरणों को प्रणाम करने का सौभाग्य आज भी हम जबलपुर-निवासियों को प्राप्य है, वे हैं—पंडित लज्जाशंकर जी झा। इनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है। फिर भी, जब हिन्दी की अवहेलना करना ही श्रेष्ठ समझा जाता था, तब इन्होंने हिन्दी की पूजा की। जबलपुर विश्वविद्यालय ने पूज्य पं० लज्जाशंकर झा को अभी-अभी डॉक्टरेट की सम्मान्य उपाधि देकर अपने एक विलंबित कर्त्तव्य की पूर्ति की है। 'प्रान्तीय सम्मेलन' के गोंदिया-अधिवेशन को झा साहब के अभिनन्दन का गौरव प्राप्त हो चुका है।

इसके बाद द्विवेदी-काल लगभग सन् १९०० से १९२० तक माना गया है। यह वह काल था, जब स्वतंत्रता का युद्ध प्रस्तावों और व्याख्यानों में सीमित नहीं रह गया था। यह राष्ट्र-चेतना जगाने का युग था। इस युग में राष्ट्रभाषा के नाते हिन्दी को, बड़े-से-बड़े नेताओं ने महानतम् उत्तरदायित्व का भार सौंप दिया था; जिसमें वे स्वयं पूरा-पूरा सहयोग, पूरा-पूरा त्याग करके, दे रहे थे। यह वह युग था, जब वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण आवागमन सहज और विचारों का आदान-प्रदान सरल हो गया था। हिन्दी के लिये यह अग्निपरीक्षा थी; जिसमें उत्तीर्ण होकर हिन्दी ने अपनी पवित्रता प्रमाणित की।

इस युग में नामोल्लेख भी बड़ी कठिन समस्या है। तथापि ये नाम जबलपुर के आकाश में आज भी जाज्वल्यमान हैं :—

जिनका 'कर्मवीर' द्वारा कार्य-क्षेत्र जबलपुर रह चुका है, वे पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी हैं। उनका अभी-अभी सम्मान करने से म० प्र० शासन का बधावा हिन्दी-प्रेमियों के घर-घर गाया जा रहा है। परन्तु चतुर्वेदी जी से पूछा जाय कि यह सम्मान कहाँ ओढ़ा, कहाँ बिछाया; तो वे कह देंगे कि मुझको मिला ही कहाँ ? वह तो पंडित माधवराव सप्रे तथा अन्य हिन्दी-सेवियों का सम्मान था। माधव की वस्तु मैंने माधव ही को सम्मर्पित कर दी।

पं० माधव राव सप्रे का भी जबलपुर से सम्पर्क रह चुका है। अज्ञातवास के बाद यहीं प्रकट होकर उन्होंने पं० विष्णुदत्त शुक्ल के सहयोग से 'कर्मवीर की स्थापना की थी। 'प्रान्तीय सम्मेलन' उनकी स्मृति में उनका जीवन-चरित्र प्रकाशित कर चुका है।

हम लोग पंडित कामताप्रसाद गुरु और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम एक ही साँस में लेते हैं। 'कविता-कलाप' के पंच महाकवियों में तो वे थे ही, पर एक ने सम्पादन द्वारा तथा दूसरे ने व्याकरण द्वारा हिन्दी के जिस ठोस रूप का निर्माण किया, वह सर्वविदित है। सम्मेलन गुरु जी का अभिनन्दन कर चुका है और उन पर एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशन की योजना है।

पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी ने दस वर्ष तक 'हितकारिणी' मासिक प्रकाशित कर प्रांत में वैसी ही हिन्दी-सेवा की, जैसे 'सरस्वती' ने हिन्दी-संसार की। आज के अनेकानेक रचनाकारों को 'हितकारिणी' ने जन्म दिया। पं० नर्मदा प्रसाद मिश्र, पं० मातादीन शुक्ल तथा पं० शालिग्राम द्विवेदी इनके मुख्य सहायक रहे। पं० शालिग्राम द्विवेदी की छाया आज भी हमें प्राप्त है। पं० नर्मदा प्रसाद मिश्र ने 'श्री शारदा' द्वारा, पं० मातादीन शुक्ल ने 'माधुरी' द्वारा अनेकानेक लेखकों को प्रोत्साहित किया। हितकारिणी संस्था सदैव हिन्दी का ऐसा हित करती रही कि हमें कभी हिन्दी-भवन की त्रुटि का अनुभव नहीं हुआ।

इस युग के अन्य पूजनीय हिन्दी-सेवी, जो हमारे बीच नहीं हैं, ये हैं : पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, पं० बालमुकुन्द त्रिपाठी, पं० गंगाविष्णु पाण्डेय,

पं० मधुमंगल मिश्र, श्री मंगलप्रसाद विश्वकर्मा, पं० श्यामाकांत पाठक, पं० रामप्रसाद तिवारी, श्री नरसिंहदास अग्रवाल आदि। कटनी के रायबहादुर डॉ० हीरालाल का उल्लेख कर चुका हूँ। उनकी ऐतिहासिक सेवाएँ ऐतिहासिक हैं। अज्ञानवश जिनका आह्वान नहीं कर सका उनको ईश्वर के निराकार रूप में प्रणाम करता हूँ। ऊपर अ-हिन्दू और अ-हिन्दी-भाषियों की हिंदी-सेवा की कुछ चर्चा आ चुकी है। बंगाली, महाराष्ट्रीय तथा गुजराती भाइयों ने यहाँ हिन्दी को कभी विलग माना ही नहीं और स्वयं भी उसे लेखनी का प्रसाद देते रहे यथा – श्री प्रभातचन्द्र बोस, पं० मनोहर कृष्ण गोलवलकर, पं० गोपाल दामोदर तामस्कर, पं० दुर्गाशंकर मेहता आदि। आज श्रीमती उषादेवी मित्रा और पं० रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे हिन्दी के अभिन्न अंग हैं।

आधुनिक युग के छायावाद-काल के ही नहीं, हमारे बीच भारतेन्दु काल के भी लेखक हैं, जिन्होंने अभी लेखनी को विश्राम नहीं दिया। वे धन्य हैं। जो अभी साहित्यिक श्री-वृद्धि किये जा रहे हैं, उनका मूल्यांकन कैसे किया जाय? उदाहरण के लिये गद्य-पद्य से हिन्दी का भंडार भरते हुए, आज भी बाबू गोविन्ददास जी किसी नवयुवक लेखक से कर्मठता में न्यून नहीं हैं। वे अनेक संस्थाओं के अधिष्ठाता तथा अध्यक्ष रह चुके हैं और हैं। श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव की साहित्य-साधना भी स्तुत्य है। उन्होंने एक युग और एक पीढ़ी का निर्माण किया है। अतएव छाया-वाद काल के उन्हीं साहित्य-सेवियों का संक्षिप्त उल्लेख पर्याप्त होगा, जो दुर्भाग्यवश आज हमारे बीच नहीं हैं।

ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान तथा श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की हिन्दी-सेवाओं से हम धन्य हो गए। श्रीमती सुभद्राकुमारी जी ने स्वयं तो अमर सेवाएँ की हीं और महिलाओं के लिये भी वे प्रथम पथ-प्रदर्शिका बनीं। अपना आभार प्रकट करने के लिये हमने उनकी मूर्ति स्थापित की। निधन के दस वर्ष बाद उनके साहित्य पर कलकत्ते से 'बुन्देले हर-बोलों के मुख' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। विक्रम विश्वविद्यालय ने उन पर शोध-ग्रन्थ लिखे जाने की अनुमति दे दी है।

पं० केशव प्रसाद पाठक को कोई जबलपुर का 'निराला' कहता था, कोई 'उमर खय्याम'। हम लोग उन्हें 'जीनियस' मानते थे। वे अपनी कृतियाँ स्वयं प्रकाशित करना चाहते थे। दुर्भाग्यवश यह नहीं हो सका। उनके निधन

के बाद साहित्य-संघ द्वारा 'केशव पाठक, व्यक्तित्व तथा कृतित्व' प्रकाशित किया गया।

श्री मंगल प्रसाद विश्वकर्मा जो असमय काल-कवलित हो गए, उनकी कहानियाँ हिन्दी की अक्षय निधि हैं। श्री इन्द्रबहादुर खरे तथा श्री प्रभात तिवारी से हमें बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। साहित्य-संघ ने उनके संग्रह क्रमशः 'विजन के फूल' तथा 'प्रभात की रूबाइयाँ' प्रकाशित किए हैं।

अज्ञानवश फिर जिन्हें भूल रहा हूँ, उनके चरणों शत्-शत् प्रणाम।

जबलपुर नगर तथा आसपास के जो हिन्दी-सेवी उपस्थित हैं, उनसे आप का सम्पर्क होवेगा ही और गोष्ठी, कवि-सम्मेलन आदि में उनकी रचनाओं की बानगी भी मिलेगी। अहो रूपम् अहो स्वरम् के नाते मैं उनका हार्दिक स्वागत तो करता हूँ पर बाकी का कार्य इसलिये छोड़ देता हूँ कि अतिथि और आतिथेय स्वयं पारस्परिक मृदु संबंध स्थापित करें।

आज जो समस्याएँ हिन्दी के सम्मुख उपस्थित हैं, वे आप महानुभावों को विदित ही हैं। हमें राष्ट्रीय एकता स्थापित करनी है, जो जनता के मानसिक विकास द्वारा ही संभव है। वह विकास तब होगा जब नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में सत्साहित्य का प्रकाश फैलेगा। हमें हिन्दी को विश्वविद्यालयों, विभिन्न कला तथा विज्ञान महाविद्यालयों, उच्चन्यायालयों के योग्य बनाना है। हमें अविलम्ब राष्ट्रभाषा हिन्दी को राजभाषा के पद पर आसीन करना है। हमें आपसी साहित्यिक विभिन्नता में एकता स्थापित कर, समस्त मन-प्राण से, हिन्दी की ऐसी श्रीवृद्धि करनी है कि विश्व-साहित्य तथा विश्व-भाषाओं में वह शीघ्राति-शीघ्र उचित स्थान प्राप्त कर सके और स्वाभाविक मानवीय भावों का कल्याणकारी संदेश देकर संसार को युद्ध के भय से मुक्त कर सके। हमें प्राचीन तथा नवीन में, पूर्व तथा पाश्चात्य में, एक स्वस्थ समन्वय उपस्थित करना है। ये सब समस्याएँ संसार के सम्मुख हैं, देश के, राज्य के तथा हमारे-आपके सम्मुख हैं। अधिवेशन में इन पर आप स्वयं विचार करेंगे ही और समुचित योजनाओं की रूपरेखा बनाकर, कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होंगे। मेरा इस सम्बन्ध में अधिक कुछ कहना निरर्थक है क्योंकि आपकी योग्यता के सम्मुख मैं एक जड़ व्यक्ति के समान हूँ।

यह हमारा बड़ा सौभाग्य है कि जिस जबलपुर में पं० रामावतार शर्मा की अध्यक्षता में अखिल भारतवर्षीय साहित्य-सम्मेलन और पं० लोचन

प्रसाद जी पांडेय के सभापतित्व में प्रान्तीय सम्मेलन सम्पन्न हो चुका है, वहीं आज हम अपने प्रांतीय सम्मेलन की बागडोर ऐसे कर्मठ-करों में दे रहे हैं, जो उसका सफलतापूर्वक संचालन करने में पूर्ण समर्थ हैं। हमारे अध्यक्ष, आदरणीय पं० द्वारका प्रसाद जी मिश्र, केवल श्रेष्ठ साहित्यकार ही नहीं, वरन् एक अत्यन्त सफल नेता भी हैं। छात्रावस्था से ही उन्होंने अपने विशुद्ध साहित्यानुराग से साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया है। उन्होंने 'श्रीशारदा', दैनिक 'लोकमत' तथा 'सारथी' का सफलतापूर्वक सम्पादन कर, साहित्य के क्षेत्र में गौरव अर्जित किया और साथ ही साथ कितने लेखकों, कवियों आदि का प्रोत्साहन तथा मार्ग-प्रदर्शन किया। वर्त्तमान संकटकाल में हमें साहित्य के क्षेत्र में जो नव निर्माण करना है, उसके लिये ऐसे ही कुशल नेता की आवश्यकता है जिसमें ज्ञान, कर्म और भाव की त्रिवेणी हो। 'कृष्णायन' के रचयिता, 'सारथी' के सम्पादक, सागर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुल-पति तथा अपने प्रदेश के मुख्य मंत्री पं० द्वारका प्रसाद जी मिश्र में हम सभी गुणों को एक साथ पाते हैं और हमें विश्वास है कि उनके द्वारा हम सबको सच्ची प्रेरणा प्राप्त होगी। साथ ही हम यह आशा करते हैं कि जो लब्ध-प्रतिष्ठ प्रतिनिधिगण, साहित्यकार तथा हिन्दी-प्रेमी और सेवक उपस्थित हैं, वे सफलतापूर्वक इस अधिवेशन को सम्पन्न कर, इस प्रदेश में हिन्दी भाषा तथा साहित्य का अपूर्व उत्थान करेंगे।

आप महानुभावों ने अनुग्रह कर यहाँ पदार्पण किया, इस कृपा के लिये हम अत्यंत कृतज्ञ हैं। आपके अनुरूप स्वागत करने की हम में क्षमता नहीं है, इसे हम भली भाँति जानते हैं। हमें भरोसा है, आप की उदारता का। हमारी प्रार्थना है और हमें आशा है कि आप हमारी त्रुटियों को क्षमा करेंगे।

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलन तृतीय अधिवेशन जबलपुर

[२०-१-६५]

उद्‌घाटन-भाषण : डॉ. धीरेन्द्र वर्मा

श्री सभापति महोदय तथा मित्रो,

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इस वार्षिक अधिवेशन का उद्‌घाटन करने को आमंत्रित करने के लिये मैं स्वागतकारिणी समिति के अधिकारियों के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शन करता हूँ।

मध्यप्रदेश, विशेषतया जबलपुर से, मेरा संबंध ४० वर्ष से भी अधिक पुराना है और इसका श्रेय आपके वर्तमान सभापति जी को है। १९२०—२२ के आसपास जबलपुर उस समय के महाकोशल की राजनीतिक तथा साहित्यिक जागृति का केन्द्र था। प्रसिद्ध मासिक पत्रिका "श्री शारदा" में तथा साप्ताहिक 'सारथी' में मैं नियमित रूप से लिखा करता था। मेरी वह लेखमाला, जो बाद को "हिन्दी राष्ट्र या सूबा हिन्दुस्तान" शीर्षक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुई थी, पहले पहल "श्री शारदा" में ही निकली थी। उस समय जबलपुर में और बाद को नागपुर, रायगढ़, जगदलपुर, रीवां आदि में होने वाली अनेक भाषा संबंधी तथा साहित्यिक गोष्ठियों में मैंने भाग लिया था। इस सम्पर्क के फलस्वरूप ही मैं पं० रविशंकर शुक्ल जी का स्नेहभाजन हो सका था और पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० कामताप्रसाद गुरु, पं० लोचन प्रसाद पांडेय, सेठ गोविन्ददास, व्यौहार राजेन्द्र सिंह तथा रामानुजलाल श्रीवास्तव आदि अनेक साहित्यिकों के सम्पर्क में आ सका। अब जीवन के इस संध्याकाल में इधर तीन चार वर्षों से मध्यप्रदेश ने संयोगवश एक बार मुझे फिर खींच लिया है। आपके राज्य के प्राकृतिक सौंदर्य, जनता की सरलता, हिन्दी वातावरण तथा मध्यकालीन संस्कृति के अवशेषों से युक्त सुन्दर ऐतिहासिक नगरों और कलात्मक स्थानों ने मुझे मध्यप्रदेश का स्थायी प्रशंसक और प्रेमी बना दिया है।

अपने देश के चार प्रमुख हिन्दी राज्यों-अर्थात् उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान — में आपका मध्यप्रदेश सदा से हिन्दी भाषा, साहित्य तथा देवनागरी लिपि का पूर्ण समर्थक रहा है। पं० रविशंकर शुक्ल जी ने शासन में हिन्दी तथा देवनागरी लिपि को उस समय प्रमुख स्थान दिया था जब अन्य हिन्दी राज्य आगे कदम बढ़ाने में ठिठक रहे थे। मुझे स्मरण है कि देवनागरी लिपि सुधार के संबंध में होने वाली लखनऊ कांफ्रेंस में उन्होंने लिपि में अनावश्यक परिवर्तन करने के विरुद्ध स्पष्ट शब्दों में निःसंकोच अपना मत प्रकट किया था और अन्त में उन्हीं के विचार ठीक सिद्ध हुए। डा० रघुवीर की सहायता से अंग्रेजी-हिन्दी पारिभाषिक कोश तथा कालिजों को हिन्दी-मराठी पाठ्क-पुस्तकें तैयार कराने का कार्य शासकीय स्तर पर मध्यप्रदेश ने ही प्रारम्भ किया था। सौभाग्य से आपका वर्तमान शासन भी इस परम्परा का फिर से चलाने का यत्न कर रहा है। १९६५ के बाद भी अंग्रेजी को शासन की भाषा बनाए रखने के प्रस्ताव को कानूनी रूप न देने की दृढ़ता पहले पहल मध्यप्रदेश ने ही दिखाई। इस जनवरी १९६५ से शासन के कार्यों में हिन्दी को समुचित स्थान देने के निर्णय को कार्यान्वित करने का श्रेय भी आपके राज्य को ही प्राप्त है। इस संबंध में हिन्दी-भाषी प्रमुख राज्य उत्तर प्रदेश के पिछड़ जाने से मुझे कभी-कभी लज्जा का अनुभव होता है और आपके राज्य से ईर्ष्या होने लगती है; इसे मैं छिपाना नहीं चाहता। ऐसा मालूम होता है कि हिन्दी के संबंध में पथ-प्रदर्शन अब कदाचित् मध्यप्रदेश को ही करना पड़ेगा, अतः इस प्रदेश के हिन्दी प्रेमियों तथा साहित्यिकों का उत्तर-दायित्व बहुत बढ़ता जा रहा है।

हिन्दी एक बार फिर संकटकाल में होकर गुजर रही है। बुझते हुए दीपक की लौ की तरह अपने अंग्रेजी-भक्त देशवासी उसे संजीवनी देने का पूर्ण प्रयत्न कर रहे हैं। इस संबंध में पुराने तर्क फिर नए जोरदार शब्दों में दुहराए जाने लगे हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी आदि आधुनिक भारत के निर्माताओं का मत था कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में देश को बाँधनेवाली अगर कोई भाषा तथा लिपि है तो वह हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि है। आज के नए मुल्लाओं का कहना है कि यह कार्य एक मात्र अंग्रेजी कर रही है और भविष्य में भी कर सकेगी। उनके अनुसार अंग्रेजी के हटते ही भारतवर्ष की एकता

छिन्न-भिन्न हो जावेगी —वह एकता जो कम से कम गत तीन हजार वर्षों से बिना अंग्रेजी के चल रही थी। दूसरा तर्क निरन्तर यह सुनने को मिल रहा है कि अन्ततोगत्वा हिन्दी देश के केन्द्रीय शासन की भाषा अंतर्राज्य कार्यों की भाषा, उच्च शिक्षा का माध्यम आदि बनेगी, यह सिद्धांत रूप से भारतीय विधान में स्वीकृत किया जा चुका है। किन्तु इन आवश्यकताओं की दृष्टि से हिन्दी अभी विकसित नहीं हो पाई है, अतः अभी अंग्रेजी को इन पदों से हटाकर हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं को स्थानापन्न करना भय से खाली नहीं है। और हिन्दी को विकसित करने का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने १९५० से अपने हाथ में ले रक्खा है। गत १४ वर्षों से हिन्दी के इस विकास की जो रफ्तार रही है उससे अनुमान होता है कि हिन्दी को ऐसी योग्यता प्राप्त करने में कम से कम वर्तमान शताब्दी तो लग ही जावेगी, सम्भव है अधिक भी लग जावे। तीसरी बात यह सुनने को मिलती है कि हिन्दी वाले भारत में हिन्दी साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं—हिन्दी को अहिन्दी भाषियों पर लादना चाहते हैं। अतः हिन्दी के अन्ध भक्तों को निरन्तर सावधान किया जाता है कि वे यह हठधर्मी छोड़ दें। साथ ही अहिंदी भाषी भारतीयों से कहा जाता है कि वे हिन्दी को भारत की राजभाषा मानने को बाध्य नहीं हैं। राजकाज, उच्च शिक्षा तथा उच्च न्यायालय के कार्यों में अंग्रेजी को ही चलाते रहें, हिन्दी वालों की तरह अपनी भाषाओं को विकसित करने के झंझट में न पड़ें।

उपर्युक्त तर्क देश के अनेक ऐसे राजनीतिक महापुरुष, विद्वान प्रोफेसर, अंग्रेजी पत्रों के सम्पादक तथा ऊँचे अफसर देते हैं जो प्रभावशाली हैं। यह अवश्य है कि इनमें शायद ही कोई हिन्दी या अन्य भारतीय भाषा अच्छी तरह जानता है अथवा भारतीय साहित्यों के पढ़ने में सचमुच दिलचस्पी रखता है। यह प्रायः वह वर्ग है जिसने बचपन में कानवेन्टों में शिक्षा पाई थी, लड़कपन में अंग्रेजी माध्यमवाले व अंग्रेजियत के वातावरण से ओत-प्रोत पब्लिक स्कूलों में पढ़ा था, व उसके बाद यदि उच्च शिक्षा के लिये आक्सफर्ड, केम्ब्रिज या लंदन नहीं जा सके थे तो उनकी नकल में अंग्रेजी शासनकाल में बनाई गई भारतीय यूनिवर्सिटियों के वातावरण में बड़े हुए थे, जिनमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं को जिनमें बरसों कोई स्थान नहीं दिया गया था। ये लोग प्रायः मेरी या उसके निकट की पीढ़ी के हैं।

इन तर्कों का उत्तर अपने दृष्टिकोण से मैं आज यहाँ संक्षेप में देना चाहता हूँ। जहाँ तक अंग्रेजी के द्वारा देश को एकता में बाँधने का प्रश्न है, यह स्पष्ट है कि भारत के दो-तीन प्रतिशत अंग्रेजी भाषा और साहित्य के अच्छे जानकार देशवासी ही इस विदेशी माध्यम की सहायता से आपस में बँधे हुए हैं। प्रश्न तो वास्तव में देश की ९७-९८ प्रतिशत जनता को बाँधने का है। उसे तो संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंशों आदि की परम्परा से आई हुई कोई आधुनिक भारतीय भाषा हो तथा ब्राह्मी, गुप्त, खरोष्ठी आदि लिपियों की परम्परा से विकसित कोई भारतीय लिपि ही एकता के सूत्र में बाँध सकती है। इस प्रकार की भारतीय परम्पराएँ ही देश को गत तीन-चार हजार वर्षों से बाँधे भी रही हैं। यह अवश्य है कि अंग्रेजी का महत्व कम हो जाने से और किसी भारतीय भाषा के स्थानापन्न हो जाने से इन दो-तीन प्रतिशत अंग्रेजी शिक्षित भाततीयों का महत्व, शक्ति तथा धाक को धक्का पहुँचेगा। भविष्य में इस वर्ग के कान्वेन्ट तथा पब्लिक स्कूलों की परम्परा में पले हुए तथा घर में अंग्रेजी बोलने वाले, मेज-कुर्सी पर खाने वाले बच्चों की विशेषता अवश्य समाप्त हो जावेगी। बल्कि हिन्दी, मराठी, तमिल, गुजराती आदि के माध्यम से साधारण स्कू ־, कालेजों में शिक्षित किसान, मजदूर तथा निम्न मध्य वर्ग के बच्चों का महत्व बढ़ जावेगा। प्रश्न वास्तव में दो-तीन प्रतिशत अंग्रेजी शिक्षित भारतीयों की 'मोनोपोली' कायम रहने या न रहने का है। अपने और अपने बच्चों के स्वार्थों को भी सुरक्षित रखना कौन नहीं चाहता है ?

मेरे कहने का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि इस प्रकार का तर्क देने वाले समस्त देशवासी केवल सीमित स्वार्थ से प्रेरित हैं। इनमें अधिकांश ईमानदारी से यह विश्वास करते हैं कि शासन तथा शिक्षा आदि के क्षेत्रों में यदि अंग्रेजी का प्रथम स्थान नहीं रहा तो देश छिन्न-भिन्न हो जाएगा, रसातल को चला जायगा। देश के स्वतंत्रता-संग्राम के समय माडरेट अथवा लिबरल भारतीय राजनीतिज्ञों का भी सचमुच यह दृढ़ विश्वास था कि यदि भारत से अंग्रेजी शासन बिलकुल हट गया तो देश में अराजकता फैल जावेगी, इसी कारण लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गाँधी के पूर्ण स्वराज्य के ध्येय से वे भयभीत हो जाते थे। मैं तो इतना ही कहूँगा कि मेरी पीढ़ी का यह भारतीय अंग्रेजिया वर्ग भी मानसिक गुलामी में उन्हीं मुट्ठी भर कुर्सीनशों माडरेट या लिबरलों के समान है। वास्तव में देश को भाषा-स्वातंत्र्य प्राप्त हो जाने से

लाभ ही लाभ हैं, हानि कुछ भी नहीं है। प्रत्येक स्वतंत्र देश की भाषा के क्षेत्र में यही स्वाभाविक स्थिति होती है कि उसकी अपनी देशभाषा अथवा भाषाएँ देश के जीवन में प्रथम स्थान पर रहें।

यहाँ भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के पक्षपाती लोग अंग्रेजी तथा अन्य विकसित तथा समृद्ध विदेशी भाषाओं के सीखने के विरोधी नहीं हैं। हम जानते हैं कि स्वतन्त्र भारत को हजारों की संख्या में अँग्रेजी भाषा जानने वाले ही नहीं बल्कि बहुत अच्छी चीनी, तिब्बती, अरबी, ईरानी, रूसी, फ्रेंच, जर्मन, स्पनिश आदि अनेक विदेशी भाषाएँ जानने वाले चाहिए। हम लोगों का अब स्वतन्त्र सम्पर्क संसार के समस्त देशों से है, कामनवेलथ में रहने पर भी इङ्गलैंड के माध्यम से नहीं। हमारी एम्बैसीज में, व्यापार की आवश्यकताओं के लिये, अन्य देशों की शिक्षित जनता से सम्पर्क स्थापित करने के लिए हमें उन देशों की भाषाओं पर अच्छा अधिकार रखने वाले सैकड़ों नवयुवकों की निरन्तर आवश्यकता है, और होगी। अतः संसार की समस्त मुख्य भाषाओं की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध प्रत्येक राज्य के कुछ विश्वविद्यालयों अथवा विशेष संस्थाओं में होना चाहिए। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि साधारण शिक्षा पाने वाले अपने विद्यार्थी उच्चतम शिक्षा भारतीय भाषाओं के माध्यम से प्राप्त न करके किसी विदेशी भाषा के माध्यम से प्राप्त करें। देश या विदेश की एक या अधिक अन्य भाषाओं का साधारण ज्ञान उनकी अपनी भाषा के लिये हितकर होगा इसलिये हमें इस सम्बन्ध में यों प्रोत्साहन देना चाहिए। किन्तु प्रत्येक विद्यार्थी के लिये किसी भी अन्य भाषा की अनिवार्यता के दृष्टिकोण को मैं अस्वाभाविक तथा शिक्षा-सिद्धांत की दृष्टि से अनावश्यक समझता हूँ। किसी विशेष आवश्यकता, कार्य अथवा खोज आदि की दृष्टि से किसी विशेष विद्यार्थी वर्ग को कोई एक एक या अधिक स्वदेशी अथवा विदेशी भाषा सीखनी पड़े वह बात भिन्न है। किन्तु इन सीमित आवश्यकताओं के कारण प्रत्येक भारतीय बालक को अनिवार्य रूप से A, B, C, D और 1, 2, 3, 4 पढ़ाना अथवा साक्षरता का प्रारम्भ c a t : cat और r a t : rat से कराना स्वतंत्र भारत के बच्चों के साथ भारी अन्याय करना है जो वास्तव में असह्य और अक्षम्य है।

मैं इस वर्ग से पूछना चाहूँगा कि क्या संसार के किसी भी अन्य स्वतंत्र देश में ऐसा होता है? फ्रांसीसी शिक्षित वर्ग प्रथम भाषा के रूप में फ्रेंच

जानता है इंगलिश, रूसी, हिन्दी, चीनी या अरबी नहीं। इसी प्रकार एक शिक्षित रूसी चीनी, जापानी, अंग्रेजी या ईरानी अपनी-अपनी भाषाओं को अपने देश को बांधने का सबसे बड़ा साधन समझता है। दुर्भाग्य से हमारे यहाँ अंग्रेजी शासनकाल के वातावरण से प्रभावित अभी कुछ लोग मौजूद हैं जो इस स्वाभाविक स्थिति को अपनी कृत्रिम शिक्षा के कारण हृदयंगम करने में असमर्थ हैं। यह बहुत अस्वाभाविक भी नहीं है क्योंकि अंग्रेजी शासन को हटे अभी १७ वर्ष ही तो बीते हैं। इस प्रकार से अपना देश परतन्त्रता और स्वतन्त्रता के सन्धिकाल में होकर गुजर रहा है। राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद हम लोग आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के संघर्ष में जुट गये। देश को पूर्ण सांस्कृतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कराने में —सांस्कृतिक शब्द का प्रयोग मैं यहाँ नाच गाने के प्रोग्राम के लिये नहीं कर रहा हूँ—अवश्य ही कुछ समय लगेगा। किंतु दिशाभ्रम को मिटाकर ठीक दिशा में प्रयत्न प्रारम्भ होना आवश्यक है, नहीं तो अन्तिम ध्येय पर पहुँचना सम्भव नहीं होगा।

दूसरा तर्क जिसका मैंने ऊपर उल्लेख किया है यह है कि हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ अभी तक विकसित नहीं हो पाई हैं। जब तक ये भाषाएँ तथा इनका साहित्य विकसित नहीं हो जाता है तब तक अंग्रेजी को चलाते रहना चाहिए। रोचक बात यह है कि यह तर्क भी उसी वर्ग के मुख से सुनने को मिलता है जो केवल अथवा प्रधानतया अंग्रेजी पढ़ा है और जो अपनी प्रादेशिक भाषा तथा अन्य भारतीय भाषाओं से लगभग अनभिज्ञ है। जो उपनिषदों को मैक्समूलर के अनुवाद की सहायता से पढ़ता है, गीता की जानकारी एनी बीसेंट के अंग्रेजी अनुवाद के माध्यम से प्राप्त करता है, जिसमें भारतीय दर्शन के ज्ञान का एक मात्र राधाकृष्णन के इस विषय के अंग्रेजी ग्रन्थ हैं, जिसने टैगोर, प्रेमचन्द, प्रसाद, मुन्शी आदि भारतीय भाषाओं के लेखकों की रचनाओं की अधिक से अधिक अंग्रेजी आलोचनाएँ संयोगवश पढ़ी हैं, इनके ग्रन्थों को मूलरूप में अथवा किसी भारतीय भाषा के अनुवाद के रूप में भी पढ़ना जिनके लिए सम्भव नहीं रहा है। जो कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतल को इसलिए श्रेष्ठ नाटक समझता है क्योंकि गेटे ने इसकी प्रशंसा की है, और गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस को इसलिए प्रभावशाली रचना मानता है क्योंकि ग्रियर्सन ने इसे Bible of Northern India कहा है।

हम इस वर्ग के इस तर्क की बिलकुल उपेक्षा कर देते यदि इसके हाथ में देश की शासन-शक्ति, नीति निर्धारित करने की शक्ति तथा देश-वासियों के विचारों को प्रभावित करने की शक्ति न होती। दुर्भाग्य से देश की ये शक्तियाँ अधिकांश में इसी वर्ग के हाथ में अब भी हैं। जहाँ तक हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के अविकसित होने का तर्क है मैं उदाहरणार्थ केवल एक बात की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहूँगा। इस तर्क के संदर्भ में यह विशेष रूप से कहा जाता है कि हिन्दी अथवा भारतीय भाषाएँ भारतीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनने की क्षमता नहीं रखतीं—न इनमें जटिल विचारों को प्रकट करने की शक्ति है, न पर्याप्त शब्दावली है और न ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी साहित्य ही है। मेरा उत्तर यह है कि तर्क या तो अज्ञानवश दिया जा रहा है अथवा अंग्रेजी को कायम रखने के स्वार्थ के कारण। देखना यह है कि वास्तविकता क्या है? हिन्दी प्रदेश के विश्व-विद्यालयों की मैं कुछ जानकारी रखता हूँ तथा हिन्दी के ज्ञान-विज्ञान के साहित्य से भी थोड़ा-बहुत परिचित हूँ, अतः मैं इस सम्बन्ध में कुछ अधिकार के साथ कह सकता हूँ। हिन्दी प्रदेश के लगभग समस्त २३-२४ विश्वविद्यालयों में बी० ए० तक की शिक्षा तथा परीक्षा का मुख्य माध्यम आठ-दस वर्षों से हिन्दी चल रहा है, इसे स्पष्टतया बताया नहीं जाता है। अभी भी अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों से आए हुए तथा भविष्य में आई० ए० एस० होने का स्वप्न देखने वाले कुछ विद्यार्थी अंग्रेजी माध्यम के सेक्शनों में पढ़ते हैं तथा अंग्रेजी के माध्यम से परीक्षा देते हैं किन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। उदाहरणार्थ पाँच वर्ष पूर्व प्रयाग विश्वविद्यालय में किसी विषय के छः सेक्शनों में प्रायः पाँच हिन्दी के और एक अंग्रेजी का होता था। विशेष महत्वपूर्ण बात यह है कि हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने और परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों के परीक्षकों की रिपोर्टों में निरन्तर यह उल्लेख होता था कि हिन्दी माध्यम से पढ़े हुए तथा परीक्षा देने वाले विद्यार्थी, विषयों को अधिक स्पष्टतया समझते हैं तथा उन विषयों के अपने ज्ञान को वे अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट भी कर पाते हैं। इनमें से कुछ विद्यार्थी हिन्दी लिखने में अशुद्धियाँ भी करते हैं, यह बात पृथक् है। इसका अर्थ तो केवल इतना है कि हमारी हिन्दी सिखाने की स्कूली प्रणाली तथा प्रबन्ध संतोषजनक नहीं है।

हिन्दी प्रदेश के विश्वविद्यालयों में एम० ए० की कक्षाओं में हिन्दी माध्यम की सहायता अध्यापकों को अधिकाधिक लेनी पड़ रही है तथा यहाँ

भी हिन्दी माध्यम से परीक्षा देने की छूट हिंदी प्रदेश के अधिकांश विश्वविद्यालयों में है। एम० ए० की परीक्षा का माध्यम भी हिन्दी शीघ्रता से हो रहा है। जहां तक पाठ्य पुस्तकों का सम्बन्ध है, बी० ए० तक के किसी भी विषय में हिन्दी पाठ्य पुस्तकों की कमी नहीं है और ये साधारणतया काफी अच्छे स्तर की हैं। एम० ए० के विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति करने वाला हिन्दी साहित्य भी प्रचुरता में तैयार हो गया है तथा हो रहा है। फिर अंग्रेजी भाषा बी० ए० तक अभी भी अनिवार्य विषय के रूप में चल रही है और बी० ए० का विद्यार्थी अंग्रेजी साधारणतया लिख, पढ़ और बोल सकता है। उसका अंग्रेजी भाषा का ज्ञान बी० ए० पास जर्मन, फ्रेंच, रूसी, चीनी अथवा जापानी विद्यार्थी से आज भी अधिक है। अतः सहायता के लिये उसे अपने विषयों की अंग्रेजी में लिखी पुस्तकें पढ़नी चाहिए और अच्छा विद्यार्थी पढ़ता भी है।

बी० एस–सी० और एम० एस–सी० कक्षाओं में तथा इंजीरियरिंग कालेजों, मेडिकल कालेजों, टेकनिकल कालेजों में अभी भी अंग्रेजी भाषा ही शिक्षा तथा परीक्षा का माध्यम चल रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन विषयों की जानकारी के लिये पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का कार्य केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने १५ वर्ष पूर्व युनीवर्सिटियों, हिंदी संस्थाओं तथा हिंदी राज्यों के हाथ से छीनकर अपने हाथ में ले लिया था और यह कार्य चींटी की चाल से चल रहा है। बी० एस–सी० को आवश्यकता की पारिभाषिक शब्दावली गत १५ वर्षों में किसी तरह तैयार हो पाई है। एम० एस–सी० के स्तर की पारिभाषिक शब्दावली के तैयार होने में कितना समय लगेगा यह नहीं कहा जा सकता है। लगभग यही स्थिति इंजीनियरिंग, टेकनीकल विषयों, मेडिसिन, कानून तथा शासन संबंधी पारिभाषिक शब्दावली की है। ऐसी स्थिति में हिंदी के व्यवहारिक ज्ञान-विज्ञान तथा शासन आदि के लिये विकसित होने में समय लगे तो आश्चर्य ही क्या है। इधर कुछ उच्च अधिकारी यत्न कर रहे हैं कि हिंदी प्रदेश के विश्वविद्यालयों में भी बी० ए० तक की शिक्षा का माध्यम फिर अंग्रेजी को बना दिया जावे। इस संबंध में हिंदी प्रदेश के विश्वविद्यालयों तथा राज्यों के अधिकारियों को अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है।

तीसरी बात जिसका इधर बहुत विज्ञापन किया गया है, हिन्दी साम्राज्य स्थापित करने और अहिंदी-भाषियों पर हिंदी लादने का तर्क है। इस

तर्क से देश के अहिंदी भाषी भाइयों को डराने का निरन्तर यत्न किया जा रहा है। मैं स्वयं हिंदी भाषी हूँ और यहाँ एकत्रित यह समाज भी प्रधानतया हिंदी भाषियों का है। क्या हमारे आपके मन में कभी भी भारत में हिन्दी साम्राज्य स्थापित करने या हिंदी न सीखना चाहने वालों को जबर्दस्ती हिंदी सिखाने का विचार आया है? हिंदी के किसी नेता ने भी इस प्रकार का कभी कोई विचार रक्खा हो मुझे तो स्मरण नहीं पड़ता। यह तर्क भी हिंदी के तथा भारतीय भाषाओं के विकास को रोकने तथा अँग्रेजी के महत्व को बनाये रखने वाला वर्ग ही देता है। वह अपने पक्ष की निर्बलता को समझकर भारतीय भाषाओं के समर्थकों को आपस में लड़वा देना चाहता है। 'भेद' का उपाय राजनीतिज्ञों का अन्तिम शस्त्र हुआ करता है।

प्रश्न वास्तव में हिंदी का किसी भाषा-भाषी प्रदेश पर लादने का नहीं है, बल्कि अंग्रेजी भाषा का समस्त भारतीय भाषा-क्षेत्रों पर लदे रहने का है। कम से कम हिंदी भाषी इसके लिये तैयार नहीं हैं। यदि तमिल, बंगाली, कन्नड़, मराठी आदि भाषाभाषी अँग्रेजी को अपने पर लादे रखना चाहें तो हम हिंदी भाषी उसमें बाधक नहीं होंगे। इसका परिणाम यही होगा कि अन्य भारतीय भाषाओं का पूर्ण विकास तब तक स्थगित रहेगा जब तक ये लोग विदेशी अंग्रेजी भाषा को अपनाए रहेंगे और अपनी अपनी भाषाओं को शासन, शिक्षा, न्याय आदि के कार्यों में अधिकाधिक प्रयोग में नहीं लाएँगे। इस व्यावहारिक आवश्यकता की पूर्ति की दृष्टि से भारतीय भाषओं में हिंदी आज भी सबसे आगे है। भविष्य में अन्य भारतीय भाषाएँ और भी अधिक पिछड़ जावेंगी। प्रजातंत्रीय शासन में अन्त में जनता की भाषाओं को ही प्रथम स्थान मिलेगा। कोई भी विदेशी भाषा उन्हें बहुत समय तक दबाये नहीं रख सकती, इसे समझना चाहिए।

इस सिलसिले में मेरी समझ में हिंदी-भाषियों को दो बातें करनी चाहिए। एक तो चार मुख्य हिंदी-भाषी राज्यों अर्थात् मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार तथा राजस्थान को और तीन छोटे राज्यों अर्थात् हिमाचल प्रदेश, पंजाब (हरियाना) और दिल्ली को संगठित रूप में शासन, शिक्षा, न्याय आदि के क्षेत्रों में हिंदी को पूर्ण रूप में अपना लेना चाहिए। इन सात हिंदी राज्यों की सरकारों को यह भी चाहिए कि हिंदी प्रदेश के लगभग दो दर्जन विश्वविद्यालयों में हिंदी को समस्त विषयों तथा उच्चतम कक्षाओं के लिये

माध्यम बनाने के संबंध में भी सम्मिलित प्रयत्न कराएँ। बंगाल अपने विश्व-विद्यालयों में बंगला को माध्यम बनाएगा या अँग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में कायम रक्खेगा. अथवा मद्रास राज्य इस संबंध में अँग्रेजी से ही चिपका रहना चाहेगा या अपने राज्य की जनभाषा तामिल को माध्यम के रूप में स्वीकृत करेगा, इसकी हम हिंदी भाषियों को चिंता करना छोड़ देना चाहिए। यदि हम शासन की भाषा और शिक्षा के माध्यम की दृष्टि से अपने ४० प्रतिशत देशवासियों के बीच सही कदम उठा कर दिखला सकें तो शेष भारत इस पथ-प्रदर्शन से आप ही लाभ उठाएगा। जैसे मैंने ऊपर संकेत किया है इस संबंध में मध्यप्रदेश शासन ने सही कदम उठाया है। हिंदी प्रदेश के एक क्षुद्र प्रतिनिधि की हैसियत से मैं उसे हार्दिक बधाई देता हूँ तथा प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन से भी अनुरोध करूँगा कि वह इसमें शासन का हाथ बँटाए और उसे जनमत के क्षेत्र में बल दे। मैं मध्यप्रदेश के शासन से इतना अनुरोध और करना चाहूँगा कि वह भाषा-नीति के संबंध में शेष छः हिंदी राज्यों को भी साथ में ले चलने का यत्न करे। इस कार्य को किसी केन्द्रीय मन्त्रालय पर न छोड़े। हिंदी के विकास के संबंध में अब चिकनो-चुपड़ी बातों से हम भ्रम में पड़े रहने को तैयार नहीं हैं। इस ध्येय की पूर्ति के संबंध में हम निश्चित परिणाम देखना चाहते हैं, और वह भी कम से कम समय में और बिना अपव्यय के।

मेरा दूसरा व्यक्तिगत अनुरोध यह है कि हम हिंदी-भाषियों को हिंदी को राष्ट्रभाषा, राजभाषा, केन्द्रीय भाषा, या लिंक-लैंग्वेज बनाने की समस्या से अपना हाथ बिलकुल खींच लेना चाहिए। इस संबंध में कुछ भी कहने से हमारे ऊपर तोड़-मरोड़ कर हिंदी लादने और हिंदी साम्राज्य स्थापित करने का आरोप लगाया जाने लगता है। लगभग १४ भाषाएँ प्रयुक्त होने वाले अपने विशाल देश में कोई एक भारतीय भाषा केन्द्रीय शासन की, मुख्य न्यायालय की तथा अन्तर्राज्य शासकीय पत्र-व्यवहार की भाषा हो यह स्वाभाविक है, किन्तु यह समस्या वास्तव में अहिंदी-भाषियों की अधिक हम हिंदी-भाषियों की कम है। स्वतंत्र भारत में बङ्गाल का मुख्य मन्त्री जब गुजरात के मुख्य मंत्री अथवा दिल्ली में बैठे प्रधान मन्त्री को पत्र लिखे तो किस भाषा में लिखे, प्रश्न यह है। सम्पूर्ण देश के भारतीय प्रतिनिधियों के द्वारा १९५० में स्वीकृत भारतीय विधान के निर्णय के अनुसार इस प्रकार के कार्यों में हिंदी भाषा तथा देवनागरी लिपि का प्रयोग होना

चाहिए। जिससे एक नई भारतीय भाषा अच्छी तरह सीखने के लिये पर्याप्त समय मिल जावे इसलिए विधान में साथ ही यह छूट दे दी गई थी कि १५ वर्षों तक अंग्रेजी को इस्तेमाल भी किया जा सकता है। किन्तु गत १५ वर्षों में शासक वर्ग तथा अधिकारीगण भारतीय विधान द्वारा स्वीकृत हिंदी भाषा तथा देवनागरी लिपि नहीं सीख सके। बड़ी आयु के लोगों की बात जाने दीजिए किंतु यदि विधान के इस निश्चय पर ईमानदारी से चला गया होता तो १९५० में प्रायमरी स्कूलों में पढ़ने वाली भारतीय बालकों की पीढ़ी शासन द्वारा स्वीकृत हिंदी भाषा तथा देवनागरी लिपि का अच्छा ज्ञान प्राप्त करके विश्वविद्यालयों से निकल कर आज समस्त शासन की बागडोर सम्हाल रही होती तथा देश का नेतृत्व कर रही होती। किंतु भारतीय विधान के इस राजभाषा सम्बन्धी निर्णय की गत १५ वर्षों में जाने अथवा अनजाने इतनी अधिक उपेक्षा और अवहेलना हुई है कि देश को सचमुच बाँधने वाली भारतीय भाषा को उचित स्थान प्राप्त नहीं हो सका। जबकि इन्हीं १५ वर्षों में अँग्रेजी शिक्षित भारतीयों के बच्चे विदेशी भाषा अंग्रेजी का उच्चतम ज्ञान प्राप्त कर सके हैं, किन्तु यही बच्चे अपनी समस्त शिक्षा के १४-१५ वर्षों के काल में विधान में स्वीकृत लिंक-भाषा हिंदी तथा देवनागरी लिपि का साधारण ज्ञान प्राप्त कर सके। यदि वर्तमान अंग्रेजी शिक्षित भारतीयों की पीढ़ी गत १५ वर्षों में हिन्दी भाषा का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकी तो वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था के चलते रहने पर अगले सौ वर्षों में भी हमारी नई पीढ़ियाँ सीख सकेंगी इसमें संदेह है – "गच्छन् पिपीलको याति योजनानां शतान्यपि अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति।' वास्तव में अपने देश का अँग्रेजी शिक्षित वर्ग अच्छी तरह समझता है कि भारतीय शिक्षा संबंधी नीति के संचालक अभी यह सचमुच नहीं चाहते हैं कि अंग्रेजी का स्थान भारतीय विधान द्वारा स्वीकृत एक भारतीय भाषा ग्रहण कर ले। जैसा ऊपर संकेत किया गया है, ऐसी नीति उनके और उनके बच्चों के हित में नहीं है। इसी सब परिस्थिति के कारण मेरा सुझाव है कि हम हिन्दी-भाषियों को केन्द्रीय भाषा और अन्तर्राज्य कार्यों की भाषा की समस्या से अपना हाथ खींच लेना चाहिए। लगभग २०,२२ करोड़ भारतीयों की जन-संख्या वाले हिन्दी राज्यों की शासन की भाषा, प्रधान साहित्यिक भाषा, शिक्षा के माध्यम की भाषा, पत्र-पत्रिकाओं की भाषा, जनता से संपर्क स्थापित करने की भाषा, हिन्दी का प्रचार और विकास का कार्य क्या कुछ

कम भारी और महत्वपूर्ण है ? मेरा तो विश्वास है कि जिस दिन हम ४० प्रतिशत हिन्दी-भाषी भारतीय अपने सात राज्यों के शासन में, यहाँ के न्यायालयों में तथा अपने विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी को प्रथम स्थान से हटाकर उन राज्यों की प्रादेशिक भाषा हिन्दी तथा देवनागरी लिपि पूर्ण रूप में चलाने में सफल हो जावेंगे, उस दिन समस्त भारत की राज-भाषा तथा लिंक-लँग्वेज की समस्या अपने आप हल हो जावेगी। हमें कमर कसके हिन्दी प्रदेशों में भाषा को उसका उचित स्थान दिलाने में जुट जाना चाहिए, शेष देश की भाषा संबंधी चिंता अहिंदी भाषा-भाषियों पर छोड़ देनी चाहिए।

मैं अत्यन्त आभारी हूँ कि आपने मेरे इस लम्बे वक्तव्य को इतने ध्यानपूर्वक सुना। मुझे वास्तविक प्रसन्नता तब होगी जब मेरे विचारों का आप मनन करें और यदि उनमें कुछ भी सार हो तो उन्हें कार्यान्वित करने में कटिबद्ध हो जावें। देश को इस समय भाषणों, लेखों, कमेटियों, कांफ्रेंसों, सम्मेलनों, आयोगों आदि की आवश्यकता नहीं है। स्वतन्त्र भारत का लक्ष्य बहुत कुछ निश्चित है, उस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए ईमानदार, परिश्रमी तथा अनुभवी लोगों को काम में एकाग्रचित्त तथा पूर्ण सहयोग के साथ संलग्न हो जाने की आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि आपका यह प्रादेशिक सम्मेलन हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास और प्रचार का कोई निश्चित कार्यक्रम बनाकर मध्यप्रदेश की जनता के संबंध में उसे कार्यान्वित करने में अगले १२ महीने अपनी पूरी शक्ति लगाएगा और एक वर्ष बीतने पर फिर एकत्रित होकर लेखा-जोखा लेकर देखेगा कि हम इस सम्बन्ध में कितने आगे बढ़ सके हैं। सौभाग्य से इस राज्य के शासन की बागडोर ऐसे व्यक्ति के हाथ में है जो हिन्दी का सचमुच हितचिन्तक है और जो कोरी बातों में नहीं बल्कि काम करने में आस्था रखता है। सम्मेलन के अधिकारियों को इस सुअवसर से पूर्ण लाभ उठाना चाहिए।

इन शब्दों के साथ मध्यप्रदेश के हिन्दी विद्वानों के इस सम्मेलन का मैं सहर्ष उद्घाटन करता हूँ।

धन्यवाद।

मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य-सम्मेलन तृतीय अधिवेशन, जबलपुर

[२०-१-६५]

अध्यक्षीय भाषण : पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र

श्रीमान् स्वागताध्यक्षजी, स्वागतकारिणी के सदस्यगण, साहित्यिक बन्धुओ, देवियो और सज्जनो,

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष चुनकर आप लोगों ने मुझे जो गौरव प्रदान किया है उसके लिये मैं आपका हृदय से आभारी हूँ। यद्यपि यह सम्मान देकर आप लोगों ने मेरे लिये अपने हृदय में विद्यमान आत्मीयता को ही प्रदर्शित करने का पक्षपातपूर्ण उपक्रम किया है तथापि मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर आपके आदेशों का पालन करने के लिये ही यहाँ प्रस्तुत हुआ हूँ।

लम्बी अवधि तक राजनीति में सक्रिय भाग लेते हुए और स्वभावतः उसमें व्यस्त रहते हुए भी हिन्दी भाषा और साहित्य के साथ मेरा जो अटूट संबंध बना रहा उसका बहुत श्रेय मेरे उन साहित्यिक बंधुओं को ही है जिन्होंने स्वाधीनता-संग्राम के संघर्षमय दिनों में जहाँ शत्रु से लोहा लिया, वहीं अपनी लेखनी की प्रखरता को भी मन्द नहीं होने दिया। उनमें से अनेक साथियों ने बलिदान के पथ पर बढ़ते हुए आनेवाली पीढ़ियों के लिये अपने गौरवपूर्ण पद-चिह्न अतीत के पटल पर अंकित कर दिये हैं जिन्हें देखकर सहसा हमारा मानस श्रद्धामय आवेग से उद्वेलित हो उठता है। सबसे पहले मैं उनकी पुनीत स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करना अपना पवित्र कर्तव्य मानता हूँ।

पिछले कुछ वर्षों से हमारा देश, काल की विचित्र गति को चकित होकर देख रहा है। देखते-देखते देश के वरिष्ठ सूत्रधार एवं साहित्य-स्रष्टा हमसे अलग होते जा रहे हैं। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, पंडित जवाहरलाल नेहरू, राजर्षि टण्डनजी, निरालाजी, नवीनजी, राहुलजी, सियारामशरणजी

और अभी-अभी हाल में ही राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी के निधन से राष्ट्र को एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। इन महानुभावों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरवमय पद प्रदान करने और समृद्ध बनाने में जो महत्वपूर्ण कार्य किया है उससे भारतीय साहित्य की अभूतपूर्व सेवा हुई है। राष्ट्र-निर्माण के रचनात्मक कार्य की दृष्टि से भाषा और साहित्य का पक्ष किसी भी प्रकार गौण नहीं कहा जा सकता। भारतीय जन-मानस के बौद्धिक और नैतिक स्तर को उन्नत बनाने में हमारे इन दिवंगत राष्ट्र-निर्माताओं का जो योगदान रहा है उसका मूल्य निर्धारण करना कठिन है।

भारतीय साहित्य सभ्यता के शैशवकाल से ही अपने मंगलमय उद्‌गारों से मानव को प्रमुदित, पुष्ट और तेजस्वी बनाने के लिये प्रसिद्ध है। उसके अनन्तर तो उसका जो अनवरत प्रवाह आरंभ हुआ उसमें समस्त विश्व के मानव-समाज ने मज्जन और पान करके अपने को पवित्र किया है। संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश के साथ-साथ दक्षिण की तमिल तथा अन्यान्य समृद्ध भाषाओं ने विश्व-साहित्य को अपनी अनुपम कृतियों से निरन्तर विभूषित किया है। आज भी हमारे देश की विविध क्षेत्रीय भाषाओं में महत्वपूर्ण साहित्य की निरन्तर रचना हो रही है और कोटि-कोटि मानवता को उससे उदात्त जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्राप्त हो रही है। अपनी पूर्ववर्ती संस्कृत, पाली, प्राकृत और फारसी भाषाओं की समृद्ध विरासत लेकर हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा मनोनीत हुई है। करोड़ों भारतवासियों के लोकप्रिय प्रतिनिधियों ने उसे समारोहपूर्वक भारतीय गणतंत्र की राष्ट्रभाषा के रूप में अभिषिक्त किया है। ऐसा होना सर्वथा उचित ही था। चन्द बरदाई और उनकी परम्परा के अनेक कवियों ने जहाँ उसे अपनी वीररसमयी वाणी से ओजपूर्ण बनाया है, वहीं संतों और भक्तों ने गंगाजल के समान अपनी निर्मल वाग्धारा से शताब्दियों तक इस देश के निवासियों के मानस को परिष्कृत और पवित्र बनाकर उनके नैतिक धरातल को इतना ऊँचा उठाया है कि उन्होंने बड़ी से बड़ी वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय आपत्तियों का डटकर सामना किया।

साहित्य की किसी भी कसौटी पर हिन्दी का साहित्य खरा उतरता है, शताब्दियों का काल-व्यवधान और हजारों मीलों की दूरी उसके प्रचार और प्रसार में कभी बाधक नहीं बन सकी। नानक, कबीर सूर और तुलसी

की वाणी का उद्घोष समय और सभ्यता की प्रगति के साथ तीव्रतर होता जा रहा है। वस्तुतः उसकी साहित्यिक समृद्धि भारत के लिये ऐसी सांस्कृतिक देन है जिसका मूल्य नहीं आँका जा सकता। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का महत्वपूर्ण स्थान स्वतः प्राप्त है। वैधानिक स्वीकृति प्रदान करना तो केवल उस वास्तविकता को प्रमाणित करने के समान है। हिन्दी ने अपना यह स्थान उन संत-महात्माओं, विद्वानों, कलाकारों, शस्त्र-जीवियों, व्यापारियों आदि के माध्यम से शताब्दियों पहले प्राप्त कर लिया था, जिन्होंने भौगोलिक सीमाओं की उपेक्षा कर देश की आध्यात्मिक एवं भौतिक सम्पन्नता को व्यापक स्वरूप प्रदान किया था। यही कारण है कि हिन्दी न केवल भारतीय गणराज्य की अपितु वृहत्तर भारत की सम्पर्क को भाषा के रूप में व्यवहृत हो रही है।

आज से लगभग १५ वर्ष पूर्व जब हमने संविधान को स्वीकार किया था तब हमारे प्रतिनिधियों ने बहुत सोच-समझकर राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान दिया था और राजकाज में पूर्णरूप से उसका उपयोग करने के लिये १५ वर्ष की अवधि निर्धारित की थी। १५ वर्ष की वह अवधि आगामी २६ जनवरी को समाप्त हो रही है। संसद् ने नये अधिनियम के द्वारा हिन्दी का वैधानिक स्थान सुरक्षित रखते हुए अंग्रेजी को सह-भाषा के रूप में व्यवहार करने की सुविधा प्रदान की है। इसका उद्देश्य बिना किसी कठिनाई के प्रशासन में हिन्दी को क्रमशः लाना है। निहित स्वार्थ वाले वर्ग के कुछ लोगों ने अपने-अपने ढंग पर संसद् के इस व्यावहारिक कदम की आलोचना आरंभ कर दी है। वे चाहते हैं कि भाषा के प्रश्न को उलझा दिया जाय। यह प्रवृत्ति किसी भी प्रकार से औचित्यपूर्ण नहीं मानी जा सकती। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा बन चुकी है और मन, वचन, तथा कर्म से उसके गौरव की रक्षा करना प्रत्येक भारतीय नागरिक का पवित्र कर्तव्य है।

वास्तव में, निहित स्वार्थ वाले लोग किसी भी समस्या को सही-सही रूप में देखना नहीं चाहते। अनुचित लाभ का आशा और झूठे भय के आतंक की दोहरी श्रृंखला में जकड़कर उनका विवेक ही बन्दी बन जाता है और वे स्वतंत्र चिन्तन की दृष्टि से पंगु हो जाते हैं। हिन्दी के इन विरोधियों की आज यही दशा है। इनकी चेष्टायें हमें सहसा इतिहास के उन भूले-बिसरे दिनों की ओर बरबस ले जाती हैं जब जनता से सर्वथा दूर रहकर तथाकथित

जाग्रत कहलाने वाले अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय नेता अपने अंग्रेजी के शब्दाडम्बरपूर्ण धुआँधार भाषणों का एकमात्र लक्ष्य गौरांग शासकों से बची-खुची कुर्सियों, पदवियों एवं झूठी प्रतिष्ठा की प्राप्ति को ही मानते थे। एक आधुनिक लेखक ने इस वर्ग की मनोवृत्ति का दिग्दर्शन इन शब्दों में किया है : "वकील लोगों की दृष्टि में, जो इस नवीन समाज को नेतृत्व प्रदान करते थे, जनता का अर्थ था केवल एक भीड़ अर्थात् कानूनी प्रक्रियाओं में प्रशिक्षित व्यक्तियों की दृष्टि में एक अवैध जनसमूह। इस प्रश्न के संबंध में उनका दृष्टिकोण ब्रिटिश अधिकारियों से मूलतः भिन्न नहीं था जो गूंगे जनसमूह से इस कारण प्रेम करते थे कि इससे प्रशासनिक कार्य के लिये, जिस पर उन्हें बहुत अभिमान था, "कच्ची सामग्री" प्राप्त होती थी। राष्ट्रीय कांग्रेस ने १८८५ में अपने प्रथम अधिवेशन से लेकर १९२० में महात्माजी के उदय होने तक वर्ष-प्रति-वर्ष अपने अधिवेशनों में जो प्रस्ताव स्वीकृत किये हैं उन पर विचार करने से यह स्पष्ट होगा कि उच्च वर्ग भारत की साधारण जनता की ओर कितना कम ध्यान देते थे। प्रारंभिक वर्षों में उनका मुख्य लक्ष्य इस बात पर केन्द्रित था कि प्रशासकीय सेवाओं के लिये भारत तथा इंग्लैंड में साथ-साथ प्रतियोगिता परीक्षाएँ हों जिससे उच्च सेवा-श्रेणियों के अधिकांश पद भारत के शिक्षित वर्गों को प्राप्त हो सकें। उनके विचारानुसार जिन अन्य समस्याओं के संबंध में तुरन्त सुधार की आवश्यकता थी उनमें से एक समस्या कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के पृथक्करण से तथा दूसरी प्रांतीय और केन्द्रीय विधान-सभाओं में अधिक निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रवेश से संबंधित थीं। कार्यपालिका और न्यायपालिका के पृथक्करण का वास्तविक अर्थ यह होता था कि प्रशासकीय कर्मचारी-वर्गों को न्यायिक पद न मिलें और उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों के पद वकील-वर्ग या अधीनस्थ न्यायिक सेवा-वर्ग के व्यक्तियों के लिये सुरक्षित हो जायें; प्रांतीय और केन्द्रीय विधान सभाओं में अधिक निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रवेश का अर्थ स्पष्टतः यह होता था कि मध्यम वर्गों को अधिक अवसर प्राप्त हों।" *

यह स्थिति अधिक दिनों न चल सकी क्योंकि उसे जनता का समर्थन प्राप्त नहीं था। थोड़े से लोगों के लिए, थोड़ी-सी माँगों के लिए, आखिर कब तक हाहाकार मचाने का नाटक चल सकता था ? जन-आंदोलन के प्रवर्त्तक के

---

* The Foundations of New India by K. M. Panikkar, p. 87.

रूप में, भारतीय राजनीति के क्षेत्र में, महात्मा गांधी के अवतरण के साथ ही अँग्रेजी के माध्यम से खेले जाने वाले इस नाटक की यवनिका का सदा के लिए पतन हो गया। स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू, पंडित मदनमोहन मालवीय, बाबू चित्तरंजनदास तथा अन्यान्य दूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने उनका साथ दिया और कांग्रेस में जनवादी तत्व उभर कर सामने आया। भारतीय जन-जीवन में उस समय जो मोड़ आया उसने एक ऐसे तूफान को जन्म दिया जिसने विदेशी सत्ता के सुदृढ़ दुर्ग को धूल में मिला दिया। उस तूफान के पीछे जनता की अभिलाषा थी, जनता की शक्ति थी, जनता की वाणी थी जिसकी अभिव्यक्ति हिन्दी और उसकी भगिनी, भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के द्वारा हुई। उसी लेखक ने इन अँग्रेज और अँग्रेजी-भक्त नेताओं की गांधी आन्दोलन के प्रति होने वाली प्रतिक्रिया का यह वर्णन किया है:—

"प्राचीन नेतृत्व को, जिसने उदारतावाद की विचारधारा को दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण किया था, यह प्रतीत हुआ कि यह आन्दोलन उन समस्त सिद्धांतों के लिए खतरा है जिन्हें वे पवित्र मानते थे। गाँधीजी पश्चिमीकरण को अस्वीकार कर रहे थे, वे नागरिकों द्वारा कानूनों की सविनय अवज्ञा का उपदेश कर रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि नवयुवक अँग्रेजी में शिक्षा प्राप्त करें। स्पष्टतः उदार मतवादियों की दृष्टि में यह एक ऐसा प्रतिक्रियावादी नेतृत्व था जिसके द्वारा एक शताब्दी के कार्य के नष्ट हो जाने की संभावना थी। परन्तु देश का विचार इससे भिन्न था। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक साधारण जन ऐसे उत्साह से अनुप्राणित हो गये थे जो क्रमिक सुधार का अनाकर्षक सिद्धांत उत्पन्न नहीं कर सका था। देश का जनसमूह क्रांतिकारी हो गया था, क्योंकि गांधीजी केवल कार्यक्रम प्रस्तुत करके ही सन्तुष्ट न रहकर समस्त भारत में गाँव-गाँव में भ्रमण करके जनता को सक्रियता की ओर अग्रसर कर रहे थे।"*

मुझे यह कहने के लिए क्षमा किया जावे कि जिस मनोवृत्ति के लोगों ने गाँधीजी के जन-आन्दोलन का विरोध किया था उसी मनोवृत्ति के आज के उत्तराधिकारी जन-भाषा हिन्दी का विरोध कर रहे हैं। स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् पुरानी नौकरशाही का ही आश्रय हमें लेना पड़ा है। इसके रंग

* The Foundations of New India by K. M. Panikkar, p. 100.

में परिवर्तन हुआ है, ग्रस्त हृदय में नहीं। यदि अँग्रेजी भाषा छोड़ने से नौकरी में बाधा आती है तो उन्हें राष्ट्र के ऐक्य की भी चिन्ता नहीं। यदि वे जनता की भाषा बोलने और लिखने लग जावें तो वे जनता में घुल-मिलकर अपनी श्रेष्ठता खो बैठेंगे। इस सरकारी-सेवा-वर्ग में अनेक समय के परखने वाले तथा राष्ट्र-हित-चिन्तक व्यक्ति भी हैं, परन्तु ये अल्पमत में हैं। हमारे कुछ तथाकथित नेता भी पुरानी मनोवृत्ति को अभी भी अपनाये हुए हैं। ये काल की गति को नहीं देखते, ये घड़ी की सुई को पकड़कर लटकने में ही पुरुषार्थ की पराकाष्ठा समझते हैं। उनके द्वारा आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व के विफल इतिहास की पुनरावृत्ति का व्यर्थ ही उपक्रम किया जा रहा है। वे इस बात को बिल्कुल भूल गए हैं कि भारत की सामाजिक व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन हो चुका है। विदेशी सत्ता के तिरोहित होने के साथ ही सामंतशाही और जन्मजात अधिकारवाद की परम्परा लुप्त हो चुकी है और उसका स्थान वयस्क मताधिकार के माध्यम से स्थापित प्रजातंत्र ने ले लिया है। कोई भी शासन, दल अथवा व्यक्ति मतदाताओं की उपेक्षा और अवहेलना करके अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता। कोई भी मतदाता अपना मूल्यवान् मत केवल दर्शनजन्य प्रेरणा, आतंक और प्रलोभन के द्वारा समर्पित करने को आज तैयार नहीं है। राजनीतिज्ञों को यदि अपने अस्तित्व की रक्षा करनी है तो बहुसंख्यक मतदाताओं से अपनी बात उनकी अपनी भाषा में कहनी होगी, उन्हें समझाना होगा और उनके मन में विश्वास उत्पन्न करना होगा। राजनीतिज्ञ लोग अपने-अपने क्षेत्रों में अपनी भाषा के माध्यम से अपने मतदाताओं से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। अँग्रेजी के माध्यम से उनकी भावना जनता तक पहुँच सकेगी इस बात पर भरोसा करने का स्वप्न किसी भी व्यावहारिक जनसेवी को नहीं देखना चाहिए।

आश्चर्य तो तब होता है जब इन दिग्भ्रांत वर्गों का पोषण करने के लिए ऐसे तत्व आकर उनसे मिल जाते हैं जिनके अन्तस्तल में भारतीयता का या तो लेश ही नहीं है अथवा वे मन ही मन उससे द्वेष रखते हैं। उनकी सारी शक्ति इसी उद्देश्य में लगी रहती है कि भारत की एकता, उसकी सांस्कृतिक समृद्धि और शक्ति के आधारभूत स्रोतों को तहस-नहस कर दिया जाय और भारतीय जन-शक्ति को विभाजित करके भारतीय राष्ट्र को दुर्बल बनाया जाय। ऐसे लोगों से हमें सचेत रहने की आवश्यकता है। इस वर्ग के लोगों ने हिन्दी की संवैधानिक स्थिति के संबंध में अनेक प्रकार के भ्रम

फैलाने का बीड़ा उठा लिया है। उन्होंने इस बात का प्रचार करने की पूरी चेष्टा की है कि हिन्दी अन्य भारतीय भाषाओं की प्रतिद्वन्द्विनी है। ऐसा कहकर वे इस सत्य का अपलाप करते हैं कि वास्तव में, हिन्दी को केवल हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्रों और केन्द्र से अँग्रेजी को हटाकर उसका स्थान ग्रहण करना है।

कुछ हिन्दी विरोधी लोग "हिन्दी साम्राज्यवाद" (Hindi Imperialism) की चर्चा करने से भी नहीं चूकते। आज से कई वर्ष पूर्व जब "भाषा-आयोग" नागपुर आया था तो मुझे उसके सामने उपस्थित होना पड़ा था। आयोग के एक सदस्य ने व्यंग करते हुए मुझसे पूछा—And what about Hindi imperialism? मैंने उत्तर दिया था—मैंने कभी भी किसी हिन्दी-भाषी के मुख से ऐसी बात नहीं सुनी और मेरा मत है कि भारत में यदि कभी हिन्दी साम्राज्य स्थापित होगा तो वह हिन्दी से दूर भागने वालों के द्वारा। वयस्क मताधिकार के इस युग में एक हिन्दी जानने वाले के विरुद्ध यदि कोई अँग्रेजी-परस्त व्यक्ति, प्रधान मंत्री के पद के लिए खड़ा हुआ तो वह अधिकांश जनता को अपनी नीति समझाकर अपने पक्ष में नहीं कर सकेगा और इस प्रकार यदि इस उच्च पद पर सदा हिन्दी-भाषी ही आरुढ़ होता रहा तो हिन्दी-विद्वेषियों की कृपा से, न कि हिन्दी भाषियों की इच्छा से, हिन्दी साम्राज्य आप ही कायम हो जावेगा।

अन्य क्षेत्रीय भाषाओं से हिन्दी का कोई विरोध नहीं है। क्षेत्रीय भाषाओं को तो अपने-अपने क्षेत्र में वही संवैधानिक महत्व प्राप्त है जो हिन्दी को हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में मिला है। यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को भी अपने-अपने अहिंदी-भाषी क्षेत्रों में अँग्रेजी को हटाकर उसका स्थान ग्रहण करना है। यह काम अन्य भाषा-भाषी भारतीयों के लिए, उनके अपने क्षेत्र में, उतना ही महत्वपूर्ण है जितना हिन्दी भाषा-भाषी जनता के लिए हिन्दी-क्षेत्र में। यदि इस काम में किसी प्रकार की ढिलाई की गई तो उन प्रदेशों की जनता अपने नेताओं को कभी क्षमा नहीं करेगी। किसी भी क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति राष्ट्रीय मर्यादा, आशा और आकांक्षाओं के अनुरूप, अँग्रेजी के सहारे, अब अधिक देर तक नहीं की जा सकती।

हिन्दी विरोधी महानुभावों से मेरा निवेदन है कि वे राष्ट्र-कल्याण ही

नहीं, अपने कल्याण की दृष्टि से भी हिन्दी को अपनाने की दिशा में कदम बढ़ावें। राष्ट्र का कल्याण चाहने वालों को तो महात्मा गांधी के इन शब्दों को हृदयस्थ कर लेना चाहिए जो उन्होंने १९२१ में "यंग इंडिया" में लिखे थे :

"भारतीयों का चरम बौद्धिक विकास अँग्रेजी के बिना भी संभव होना चाहिए। बालक-बालिकाओं के मन में यह विचार बैठना कि अँग्रेजी ज्ञान के बिना उच्च समाज में प्रवेश मिलना असम्भव है, भारत के पौरुष का, विशेषकर नारीत्व का अपमान है। यह विचार ही इतना अपमानजनक है कि इसे सहन नहीं किया जा सकता। अँग्रेजी के मोह से छुटकारा पाना स्वराज्य का अनिवार्य अंग है।"

जिस ऐतिहासिक संगठन की प्रादेशिक शाखा के अधिवेशन में हम सब यहाँ एकत्र हुए हैं, उसका महत्व भारतीय इतिहास में अद्वितीय है। समस्त देश में ही नहीं, अन्यत्र भी, जहाँ तक मेरी जानकारी मुझे ले जाती है, भाषा और साहित्य के लिए एक साथ संघर्ष और निर्माण दोनों क्षेत्रों में काम करनेवाली ऐसी कोई दूसरी संस्था आज तक देखने में नहीं आई। इस संगठन की एक बड़ी विशेषता यह रही है कि इसका रूप अत्यन्त रचनात्मक राष्ट्रीय, सार्वदेशिक और प्रजातांत्रिक रहा है। आज से लगभग ५५ वर्ष पूर्व भारत की सांस्कृतिक राजधानी वाराणसी में तपःपूत, प्रातःस्मरणीय महामना मालवीयजी की अध्यक्षता में इस संस्था का पहला अधिवेशन सम्पन्न हुआ था। इसके संयोजकों में राजर्षि बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन का प्रमुख स्थान था जिन्होंने अपना समस्त जीवन इसकी उन्नति और प्रगति के लिये समर्पित कर दिया था। इस संगठन को वे अपनी सन्तान से बढ़कर मानते थे और इसके लिये सब कुछ त्याग करने को तत्पर रहते थे।

कल्पना कीजिये उस युग की जब ब्रिटिश शासन अपने प्रखर तेज के साथ सारे देश पर छा गया था और राजनीतिक चेतना का आरम्भ भी नहीं हुआ था। वास्तव में, उस युग में इस प्रकार की संस्था की स्थापना करने वालों की सूझ-बूझ और दूरदर्शिता की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी होगी। देखते ही देखते यह छोटा-सा संगठन विशाल वट-वृक्ष के रूप में परिणत हो गया। हिन्दी के प्रचार-प्रसार, पक्ष-समर्थन, साहित्य-प्रकाशन आदि की दृष्टि से सम्मेलन ने जो काम लगभग ५ दशकों तक किये हैं उसी

के परिणामस्वरूप हिन्दी की मानवृद्धि हुई और वह राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हुई। हिन्दी से संबंधित कोई भी ऐसा पक्ष नहीं था जिस पर सम्मेलन ने पूर्ण रूप से ध्यान न दिया हो। प्रत्येक प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार, वाद-विवाद और निर्णय करके ही सम्मेलन ने अपने कदम उठाये हैं। विश्व-वंद्य महात्मा गांधी ने सम्मेलन के द्वारा किये जाने वाले कार्यों के महत्व को आरंभ से ही भलीभाँति समझ लिया था। सन् १६१८ और १६३५ में उन्होंने साहित्य-सम्मेलन का सभापतित्व भी किया। यह इस बात का द्योतक है कि राष्ट्रीय दृष्टि से सम्मेलन का क्या महत्व रहा है और देश में राष्ट्रीयता की जड़ को गहरी बनाने के कार्य में उनका क्या योगदान है। सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों में प्रतिवर्ष पारित होने वाले प्रस्तावों पर विचार करने से पता लगता है कि किस प्रकार हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में निरंतर विकसित करने और उसे अपना स्थान दिलाने में सम्मेलन ने कितना प्रयत्न किया। देश का कोई भी ऐसा हिन्दी भाषी नेता नहीं हुआ जिसका सम्मेलन से निकट संपर्क न रहा हो। सम्मेलन की इस प्रगति में पिछले कुछ वर्षों से गत्यवरोध की जो स्थिति उत्पन्न हो गई थी, वह अब दूर हो गई है और यह आशा की जा सकती है कि राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के व्यवहार के प्रारंभिक काल में उसे सम्मेलन का समुचित सहयोग प्राप्त होगा।

पूर्व मध्यप्रदेश में, स्वर्गीय पंडित रविशंकर शुक्ल के प्रयत्न से मराठी और हिन्दी दोनों का ही समान स्थान था। मध्यप्रदेश के लिये यह अत्यन्त गौरव का विषय है कि इस क्षेत्र में भाषा संबंधी विवाद कभी उत्पन्न नहीं हुआ और दोनों ही भाषाएँ एक दूसरे के साथ मिलकर आगे बढ़ती रहीं। नये मध्यप्रदेश में यद्यपि हिन्दी समस्त क्षेत्र की एकमात्र भाषा रह गई है फिर भी उसकी पुरानी परम्परा ज्यों की त्यों कायम है। नये मध्यप्रदेश में हिन्दी का क्षेत्र बहुत अधिक बढ़ गया है। किन्तु इसके साथ ही वह प्राचीन परम्परा अनवरत रूप से चलती जा रही है। ग्वालियर, इन्दौर और भोपाल में पहले के समान ही विविध भाषाओं की साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ निरन्तर जारी हैं और सार्वजनिक रूप से उनको प्रश्रय और प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यों में गत्यवरोध के होते हुए भी तुलनात्मक दृष्टि से यहाँ के साहित्यिक संगठन अधिक क्रियाशील रहे हैं। ग्वालियर की साहित्य सभा, इन्दौर की मध्यभारत हिन्दी साहित्य समीति, विन्ध्य प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन और प्रांतीय सम्मेलन

ने पर्याप्त जागरूकता का परिचय दिया है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि प्रांतीय सम्मेलन ने नये मध्यप्रदेश में नये सिरे से हिंदी के विकास और प्रसार के लिये आगे बढ़कर उत्साहपूर्वक सक्रिय कार्य करने का संकल्प किया है। यह इस प्रदेश की साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना के अनुरूप ही है।

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन सन् १९१८ में हुआ। इसके अध्यक्ष पं० प्यारेलाल मिश्र थे। हमारे आदरणीय नेता स्वर्गीय पं० रविशंकर शुक्ल ने सम्मेलन की स्थापना और संगठन के लिये बहुत दृढ़ता से काम किया था। नागपुर अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने जो विचार प्रकट किये थे, उनसे स्पष्ट है कि वे हिन्दी को भारत की वास्तविक राष्ट्रभाषा के रूप में देखना चाहते थे। उन्होंने कहा था, "कोई भी विदेशी भाषा हमारी जातीय आकांक्षाओं एवं जातीय मनोवृत्ति को यथार्थ रूप में प्रकट करने में सहायक नहीं हो सकती। हमें तो सबसे व्यापक और उपयुक्त भाषा को ही राष्ट्रभाषा का स्थान देना होगा।"

प्रान्तीय सम्मेलन अपने इस लक्ष्य की ओर से निरन्तर जागरूक है और उसका नेतृत्व सदा ही राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्तियों ने किया है। एक ओर जहाँ इससे सम्मेलन का स्वरूप राष्ट्रीय बना रहा वहीं दूसरी ओर यह कठिनाई भी आई कि जब कभी देश में राजनीतिक संघर्ष अथवा अन्य प्रकार के महत्वपूर्ण कार्य सामने आए तो सम्मेलन के संगठन-कार्य में शिथिलता आ गई। यही कारण है कि बीच-बीच में सम्मेलन की गति-विधि में अतंर रहा। स्वाधीनता के अनन्तर स्थिति कुछ बदली और सम्मेलन ने रचनात्मक कार्यों की ओर ध्यान दिया और उसकी ओर से कई उपयोगी प्रकाशन किये गये तथा प्रधान कार्यालय के लिए भवन का निर्माण हुआ। किंतु राज्य पुनर्गठन के फलस्वरूप स्वभावतः प्रगति का वह क्रम आगे न बढ़ सका।

आज इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि सम्मेलन को नये सिरे से पुनर्गठित करके उसे सुदृढ़ बनाया जाय और उसके संचालन का इस प्रकार स्थायी प्रबंध किया जाय कि उसमें रह-रहकर क्रम-भंग और गतिरोध उत्पन्न न हो। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि सम्मेलन वास्तविक अर्थ में साहित्य-सेवियों की प्रतिनिधि संस्था बने। इसका अर्थ यह नहीं कि साहित्य के अन्य अंगों के लिये सम्मेलन में स्थान न होगा, किन्तु यह बात सदा स्मरण

रखने योग्य है कि सम्मेलन साहित्यिकों की संस्था है। साहित्य की उन्नति और विकास के लिये प्रयत्न करना और उसके लिये आवश्यक साधन उपलब्ध करना तथा अनुकूल वातावरण का निर्माण करना उसका लक्ष्य है। यह कार्य तभी हो सकता है जब साहित्यिक स्वयं आगे बढ़कर सम्मेलन के कामों में भाग लें और उसे एक सक्रिय संगठन के रूप में चलाने के लिये प्रयत्नशील हों। सम्मेलन से साहित्यिकों का अलग, तटस्थ अथवा उदासीन रहना न तो सम्मेलन के लिये हितकर है और न उन साहित्यिकों के लिये जिनके लिये उसकी स्थापना हुई है। अन्य वर्गों के लोगों को सक्रिय सहायता और सहानुभूति सम्मेलन के लिये उपयोगी हो सकती है किन्तु उसकी तुलना साहित्यिकों के सक्रिय सहयोग से नहीं की जा सकती।

भाषा का प्रश्न प्रशासन तक सीमित नहीं है। उसका सबसे बड़ा क्षेत्र शिक्षा से संबंधित है। यह विषय प्रशासनिक मामलों से भी अधिक महत्वपूर्ण, विस्तृत और श्रमसाध्य है। चिकित्सा, यांत्रिकी आदि तकनीकी विषयों की शिक्षा के लिये न तो हमारे पास पर्याप्त पारिभाषिक शब्द हैं और न पाठ्य-पुस्तकें। यह ऐसी समस्या है जिसको सुलझाने में हमें वर्षों तक संगठित रूप में कठोर परिश्रम करने की आवश्यकता होगी। विज्ञान और कला की उच्च शिक्षा की दिशा में यद्यपि कुछ काम हुआ है किंतु उस दिशा में भी अभी बहुत कुछ करना शेष है। देश के, विशेषकर हिंदी भाषी क्षेत्र के प्रतिभाशाली विशेषज्ञों को इस कार्य का भार अपने ऊपर आगे बढ़कर लेना चाहिए। यह प्रसन्नता का विषय है कि केन्द्रीय शासन की विश्वविद्यालयीन स्तर की महत्वपूर्ण पुस्तकों के अनुवाद की योजना के अंतर्गत लगभग ३ दर्जन पुस्तकों के अनुवाद का कार्य विभिन्न विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों तथा अन्य विद्वानों द्वारा हाथ में लिया गया है। आवश्यकता इस बात की है कि समस्त हिंदी-भाषी क्षेत्र की प्रतिभा, साधन और धन का एकत्रीकरण करके उसका इस प्रकार उपयोग किया जाए कि उसका कोई भी अंश व्यर्थ न जाय और पुनरावृत्ति की स्थिति उत्पन्न न हो। शासन-भार ग्रहण करने के कुछ ही समय बाद मैंने इस दिशा में प्रयत्न आरंभ किया था और विभिन्न हिंदी-भाषी राज्यों से पत्र-व्यवहार भी किया था। इसके फलस्वरूप अब सम्मिलित प्रयत्न का यह कार्य केन्द्रीय गृह मंत्रालय के माध्यम से संपन्न हो रहा है और यह आशा की जा सकती है कि शीघ्र ही इस दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ दृष्टिगोचर होंगी।

हिंदी भाषी राज्यों के सम्मिलित और योजनाबद्ध प्रयत्न को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है : (१) शब्दावली में एकरूपता लाना, (२) पाठ्य-पुस्तकों का एकीकरण और (३) प्राध्यापकों का पारस्परिक विनिमय। इस समय विभिन्न राज्यों में पारिभाषिक शब्दों में जो अंतर है उसे शीघ्र ही दूर करना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो आगे चलकर जब हिंदी का व्यापक रूप से प्रयोग होने लगेगा तो अर्थ-वैषम्य उपस्थित होने के प्रसंग सामने आयेंगे। पाठ्य-पुस्तकों के विषय में स्थिति यह है कि हिन्दी माध्यम से अध्यापन करने में पुस्तकों की कमी एक भारी कठिनाई के रूप में सामने आ रही है। यदि एक ही पाठ्य-पुस्तक समस्त हिंदी राज्यों के लिये निर्धारित की जाए तो एक ओर जहाँ आर्थिक बचत होगी वहीं एक समय में अधिक पुस्तकें उपलब्ध हो सकेंगी और माध्यम के रूप में हिंदी के प्रयोग का कार्य शीघ्रता से आगे बढ़ेगा। विश्वविद्यालयीन स्तर पर हिन्दी माध्यम से पढ़ाने वाले उच्च कोटि के प्राध्यापकों की कमी को भी पारस्परिक विनिमय द्वारा एक सीमा तक हल किया जा सकता है।

सार्वजनिक जीवन में प्रत्येक आन्दोलन की तीन अवस्थायें देखी जाती हैं—उद्देश्य के लिये वातावरण का निर्माण, उद्देश्य की प्राप्ति और उद्देश्य की सम्पुष्टि। हिंदी के संबंध में हमने दो मंजिलें पार कर ली हैं और तीसरी मंजिल में कदम रखा है। यह मंजिल जहाँ हमें एक ओर संतोष की सांस लेने का अवसर प्रदान करती है वहीं वह उस महान् कार्य के लिये हमारा आह्वान भी करती है जिससे हमें अपने धैर्य, अध्यवसाय और सूझ-बूझ की कठिन परीक्षा में से पार होना होगा। कल्पना कीजिए, ४५ करोड़ की जनसंख्या वाले महान् राष्ट्र की विविध प्रकार की साहित्यिक, शैक्षणिक, तकनीकी और दैनंदिनी सूचना एवं जानकारी के लिये मुद्रित सामग्री उपलब्ध करने का महान् कार्य क्या चाहने मात्र से सम्पन्न हो जाएगा ? उसके लिए आवश्यक है कि इस विशाल सामग्री का सही-सही विभाजन किया जाए, विभिन्न क्षेत्रों में उसे बाँटा जाए तथा उसके सृजन, उत्पादन और वितरण की व्यवस्था की जाए। इसके लिए आवश्यकता होगी हजारों मेधावी और होनहार कार्य-कर्त्ताओं की और उनके लिये सुविधा उपलब्ध करके उनसे योजनाबद्ध रूप में काम लेने वाले संयोजकों की। देश के कायाकल्प के लिये हमें इस महान यज्ञ की रचना करनी ही होगी। इसके सिवा और कोई चारा भी नहीं है।

इस समस्त कार्य-कलाप में सबसे अधिक महत्व का कार्य शुद्ध साहित्य

के सृजन का है। मध्यप्रदेश की साहित्यिक परम्परा इस बात की ओर इंगित करती है कि समय आने पर मध्यप्रदेश साहित्यिक की प्रतिभा कभी पीछे नहीं रहेगी। दीर्घकालीन राजनीतिक संघर्ष और प्रशासनिक स्थिरीकरण की प्रक्रिया ने प्रतिभा के विकास और उपयोग के लिए आवश्यक वातावरण को बहुत अनुकूल नहीं रहने दिया है। अब वह समय आ पहुँचा है जब हमें साहित्य-सृजन के लिये अनुकूल वातावरण का निर्माण शीघ्र ही करना चाहिये। समाज में विक्षोभ या विषाद की अवस्था को अधिक देर तक उभरने या पनपने देना उसके सुबुद्ध वर्ग के लिये एक चुनौती ही कही जा सकती है। हमें इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए और समाज को समुचित दिशा और स्वस्थ प्रेरणा प्रदान करने वाले साहित्य के सृजन की ओर तत्काल उन्मुख होना चाहिए।

हिन्दी के साहित्यकारों को यह भी स्मरण रखना चाहिए कि राष्ट्रीय एकीकरण के महत्वपूर्ण कार्य में उनका योगदान असीम संभावनाओं से युक्त है। यह कार्य वे तभी सम्पन्न कर सकते हैं जब वे स्वयं विविध भाषाओं के साहित्य से यथासंभव अधिक से अधिक परिचित हों। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के व्यापक प्रचार की दृष्टि से यह आवश्यक था कि अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का व्यापक प्रचार किया जाता। इसके महत्व को हमारे नेताओं ने समझा और योजनापूर्वक बड़े पैमाने पर अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिंदी का प्रचार हुआ और आज भी हो रहा है। किन्तु अहिंदी भाषी क्षेत्रों से प्रायः यह आवाज सुनाई पड़ती है कि हिंदी वाले अहिंदी भाषियों को हिंदी पढ़ने के लिए तो कहते हैं किंतु वे स्वयं इस बात के लिए कभी उत्सुक नहीं दिखाई देते कि वे हिंदी से भिन्न अन्य देशी भाषाओं का अध्ययन करें। हिंदी भाषा-भाषियों को इस भावना की गंभीरता को समझ कर अन्य भाषाओं में विशेष रुचि दिखानी चाहिए। विद्वानों के लिए तो ऐसा करना अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इससे भी बढ़कर महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि हिंदी क्षेत्रों के लोग अहिंदी क्षेत्र की, विशेषकर दक्षिण की, भाषाओं का अध्ययन करें तो राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से भी यह कार्य उपयोगी सिद्ध होगा। मैं जब सागर विश्वविद्यालय में उपकुलपति के पद पर था उस समय विश्वविद्यालय में मराठी की कक्षायें बन्द करने का प्रश्न उठा था। मैंने उसका जोरदार विरोध किया था, मैं तो यह भी चाहता था कि वहाँ तेलुगू की कक्षाएँ भी खोली जाएँ। अच्छा हो यदि मध्यप्रदेश के प्रत्येक विश्वविद्यालय

में दक्षिण की एक-एक भाषा के उच्चस्तरीय अध्ययन की व्यवस्था की जाए।

साहित्य, संगीत, नृत्य-नाट्य एवं ललित कलाओं के क्षेत्र में मध्यप्रदेश का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इस क्षेत्र के साहित्यकारों और कलाकारों ने देश के सारस्वत वैभव को बढ़ाने में सदा ही अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। शासकीय और अशासकीय दोनों क्षेत्रों में जो प्रयत्न अब तक हुए हैं वे उत्साहवर्द्धक हैं; किन्तु देश के नव-निर्माण की इस बेला में प्रत्येक कार्य को योजनाबद्ध तरीके से संगठित रूप में करना एक अनिवार्य आवश्यकता है। मध्यप्रदेश शासन ने यह निश्चय किया है कि साहित्य, संगीत और नाटक तथा ललित कलाओं के लिए अलग-अलग सुसंगठित अकादमियों का निर्माण किया जाये जिससे राज्य में बिखरी हुई प्रतिभाओं का सही मूल्यांकन हो सके, उनके विकास और संरक्षण का कार्य नियमित रूप से सम्पन्न हो और हमारा जन-जीवन अधिक रसपूर्ण और उदात्त भावनाओं से युक्त हो। समाज के मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य के लिए इस प्रकार का वातावरण अत्यन्त उपयोगी होता है और उसे उपलब्ध कराना प्रत्येक लोक-कल्याणकारी शासन का कर्त्तव्य है।

मध्यप्रदेश के सुदूर क्षेत्रों से साहित्यिक विद्वान और कार्यकर्त्ता इस सम्मेलन में भाग लेने के लिये यहाँ उपस्थित हुए हैं। यह उनके हिन्दी-प्रेम और राष्ट्रीय चेतना का परिचायक है। मैं उन सबका ध्यान आज की भाषा और साहित्य-विषयक समस्याओं की ओर आकृष्ट करते हुए उनसे निवेदन करना चाहता हूँ कि वे सब मिलकर उन प्रश्नों पर यहाँ मनोयोगपूर्वक विचार करें और सम्मेलन में किये गये निर्णयों के अनुसार अपने-अपने क्षेत्रों में जाकर अनुकूल वातावरण का निर्माण करने में लग जायँ। समय की यही माँग है। जो जाति समय की माँग पूरी कर सकती है उसका भविष्य उज्ज्वल होता है और आने वाली पीढ़ियों का मार्ग उससे प्रशस्त होता है। परमपिता परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि यह सम्मेलन उपस्थित समस्याओं को हल करने की दिशा में अपनी क्षमता का परिचय दे और राष्ट्र-निर्माण के शुभ कार्य में अपना अंशदान करके यश का भागी बने।

●

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलन तृतीय अधिवेशन, जबलपुर

साहित्य एवं कला-प्रदर्शनी

[२०-१-६५]

उद्घाटन भाषण : डॉ. महाराज कुमार रघुवीर सिंह

मान्यवर विद्वत्-वृन्द, कलाकर, पुरातत्त्ववेत्ता और अन्य उपस्थित महानुभाव —

इस कला प्रदर्शनी का उद्घाटन करने का निर्देशन जब मुझे प्रथम बार मिला तब एकाएक मुझे पूरे पैंतीस वर्ष पहले के उन दिनों का स्मरण हो आया जब इसी नगरी के कुछ उत्साही साहित्य-सेवी यहाँ से 'प्रेमा' नामक मासिक-पत्रिका प्रकाशित करने लगे थे, और मैं भी जब उस पत्रिका में यदा-कदा थोड़ा-बहुत लिखता रहता था। तब 'प्रेमा' के ही द्वारा यहाँ के कई-एक साहित्यकारों तथा कला-प्रेमियों से अनायास मेरा संपर्क स्थापित हो गया था, यद्यपि उनमें से कई एक के साक्षात्कार का सौभाग्य मुझे अब तक प्राप्त नहीं हो पाया है। मैं सोचता हूँ कि उन्हीं दिनों की अपनी उन 'शेष स्मृतियों' से प्रेरित होकर आज के इस उद्घाटन-कार्य के लिये मुझे निर्देश दिया गया है, वरना तदर्थ योग्यतम साहित्य-साधकों, कला-विदों अथवा पुरातत्व-शास्त्रियों की यहाँ कौनसी कमी थी ? परंतु जब मुझे यह कार्य सौंप दिया गया है तब मैं आशा करता हूँ कि आज की मेरी इन उलटी-सीधी अटपटी बातों को सुनकर उन पर आप अत्यावश्यक ध्यान देने की कृपा करेंगे।

स्वाधीनता-प्राप्ति को आज सत्रह वर्ष और नये मध्यप्रदेश की स्थापना हुए आठ वर्ष से अधिक होने आए हैं। अतः आज जब हमारे इस प्रदेश में इस प्रकार की कला-प्रदर्शनी का संभवतः प्रथम बार यह अवसर

आया है तब यह अत्यावश्यक हो जाता है कि इस प्रदर्शनी के विभिन्न विषयों संबंधी अब तक की प्रगति पर कुछ सिंहावलोकन किया जावे जिससे तद्विषयक अपने भावी मार्ग और कर्तव्य को समझने-बूझने में कुछ सहायता मिल सके।

पुरातत्त्व—भारत-शासन के केन्द्रीय पुरातत्त्व-विभाग, राज्य के पुरातत्त्व-विभाग, सागर विश्वविद्यालय और पूना के डा० सांकलिया के साथियों ने पिछले युग में पुरातत्त्व संबंधी कुछ उल्लेखनीय कार्य किया है। नर्मदा घाटी में महेश्वर में, चंबल घाटी में नागदा और खड़ावदा आदि में, क्षिप्रा के तीर पर उज्जैन में और मालवा के पूर्वी छोर पर एरन आदि स्थानों पर कुछ-कुछ कार्य हुआ है और तत्संबंधी थोड़ी बहुत जानकारी प्रकाशित हुई है। परंतु अपने इस प्रदेश की विशालता, उसकी ऐतिहासिकता तथा उसमें प्राचीनतम स्थानों और महत्त्वपूर्ण स्थलों की बहुलता को देखते हुए इस सारे कार्य को भी सर्वथा नगण्य ही कहना पड़ता है। उज्जैन में प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के विशेष अध्ययन की व्यवस्था होने के बाद भी विक्रम विश्वविद्यालय ने इस ओर अब तक कोई ध्यान नहीं दिया है। वत्स भट्टी आदि अनेकानेक महा-कवियों की जन्मभूमि और वीरवर यशोधर्मन का विजयांगण दशपुर आज भी पुरातत्त्व-संशोधकों के फावड़े-कुदाली की प्रतीक्षा में है।

प्रति वर्ष कई सहस्र रुपये व्यय कर कालिदास महोत्सव द्वारा कालिदास की भाव-भूमि की जाँच-पड़ताल होती रहती है, परंतु प्रदेश के अंतर्गत कालिदास-कालीन उल्लेखनीय ऐतिहासिक स्थलों को खोज कर खोद निकालने के लिए कभी कहीं कोई उत्सुकता नहीं दिखाई पड़ती है। चीनी यात्री ह्वान सांग के यात्रा-विवरण की ही सहायता से सुप्रसिद्ध इतिहासकार स्वर्गीय डा० अनन्त सदाशिव अल्तेकर ने वैशाली के उस सुविख्यात पुनीत बौद्ध-स्तूप को खोद निकाला था जिसमें सहस्रों वर्ष पूर्व स्वयं बुद्ध के अस्थि-कण समाविष्ट किये गये थे। तब मेघदूत के आधार पर गंभीर और चर्मण्वती नदियों के बीच देवगिरि पहाड़ पर निर्दिष्ट कार्तिकस्वामी के मन्दिर के भग्नावशेषों को खोद निकालना कोई सर्वथा असंभव बात नहीं जान पड़ती है।

ऐसे नये उत्खनन की अपेक्षा समूचे प्रदेश में सर्वत्र बिखरे हुए पुरातत्त्वीय महत्त्व के भग्नावशेषों, मूर्तियों या अन्य स्थापत्य के संग्रह और संरक्षण की समस्या कहीं अत्यधिक उत्कट हो गई है। केन्द्रीय भारत-शासन के निर्देशानुसार राज्य-शासन ने भी तदर्थ आवश्यक कानून बना दिया है, परंतु उसको पूर्णतया कार्यान्वित करने में अनेकानेक बाधाएँ सामने आ रही हैं, जिनको जल्दी से दूर कर सकना सरल नहीं जान पड़ता है। हमारे भूतपूर्व मुख्य-मंत्री डा० कैलाशनाथ काटजू साहिब के कहने-सुनने पर 'गंधावल' ग्राम का नाम बदल कर 'गंधर्वपुरी' रख दिया था, परंतु उनके बहुत चाहने और निरंतर प्रयत्नों के बाद भी आज उस 'गंधर्वपुरी' में सर्वत्र बिखरी पड़ीं अनेकानेक छोटी-बड़ी मूर्तियों तथा उनके भग्नावशेषों के संग्रह तथा संरक्षण के लिये कुछ भी नहीं किया जा सका है, तब उनके अध्ययन तथा वहाँ के इतिहास पर प्रकाश डाल सकने वाली सामग्री को वहाँ खोज निकालने की ओर कौन कैसे ध्यान देता ? प्रत्येक जिले में एक-एक संग्रहालय की स्थापना का दृढ़ संकल्प किया जा चुका है परंतु उस दिशा में अभी तक कुछ भी होता नहीं देख पड़ रहा है।

राज्य में अब तक हुए या हो रहे उत्खनन और खोज कार्य का आवश्यक विवरण शीघ्र ही प्रकाशित हो जाना चाहिये जिससे उस दिशा में आगे या अन्यत्र कार्य करने वालों को वह सारी जानकारी सुलभ हो जावे तथा इतिहासकार उसका समुचित अध्ययन अथवा उपयोग कर सकें। पुनः किसी क्षेत्र विशेष के अन्तर्गत पड़ोसी राज्य की सीमा में हो रहे उत्खनन और खोज-कार्य की पूर्ण जानकारी भी यहाँ रखनी चाहिये। चंबल नदी के ऊपरी कांठे में प्राचीन इतिहास और संस्कृति का विशेष विकास हुआ था, अतः वहाँ की खुदाई से प्राप्त सारी जानकारी का विशेष महत्त्व है। दक्षिण में नागदा और उत्तर में खड़ावदा से प्राप्त पुरातत्त्वीय जानकारियों की अत्यावश्यक लुप्त कड़ियाँ राजस्थान द्वारा चौमहला परगने में करवाई गई खुदाई से प्राप्त जानकारी में ही मिल सकेंगी, अतः उसे प्राप्त कर हमें उनके अध्ययन में समुचित सामंजस्य स्थापित करना होगा।

पुरातत्त्वान्वेषण कार्य संबंधी विवरणों की यह चर्चा अनायास ही स्मरण दिला देती है केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग के कनिंगहम आदि महान्

पुरातत्त्वविज्ञ मुख्य निर्देशकों के कार्य-विवरण की कई युगों पुरानी उन अनेकानेक रिपोर्टों का जो आज भी इतिहासकारों आदि के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण और अत्यन्त उपयोगी हैं, तथापि हमारे समूचे प्रदेश में जिनकी इनी-गिनी प्रतियाँ ही प्राप्य हैं और वे भी बहुत ही जीर्ण-शीर्ण हो गई हैं। देश भर में अधिकाधिक नये-नये विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय खुलते जा रहे हैं और कई-एक बड़े पुस्तकालयों की स्थापना की जा रही है। अतः उन सब में इन सारी पुरानी रिपोर्टों को प्राप्त करने के लिये उन सबका पुनः प्रकाशन आज तो सर्वथा अनिवार्य हो गया है। भारत शासन के ही प्रकाशन होने के कारण यह कार्य उसी के द्वारा होना चाहिये, परंतु यह तब ही होगा जब सारे प्रमुख अधिकारी विद्वान, विभिन्न विश्वविद्यालय और सब राज्य-शासन इसकी जोरों से माँग करें। अतः मेरा यह विनम्र आग्रह है कि शीघ्रातिशीघ्र इसकी माँग की जाना चाहिये।

चित्रकला—हजारों वर्ष पहिले भी इस प्रदेश के जंगल-वासी अपनी गुफाओं में पत्थर-शिलाओं पर अनेकानेक चित्रों का चित्रण करते थे। पचमढ़ी, सरगुजा आदि क्षेत्रों में पाये जाने वाले इन गुफा-चित्रों की गणना भारत के प्राचीनतम गुफा-चित्रों में की जा सकती है। बाघ की गुफाओं के भित्ति-चित्र इस प्रदेश की ही नहीं, समूचे भारत की अमूल्य सांस्कृतिक निधि हैं। यद्यपि प्राचीन काल में चित्रित कोई भी चित्र अब प्राप्य नहीं है तथापि तत्कालीन साहित्य को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तब इस प्रदेश के कुछ भागों में वस्तुतः चित्रकला की उल्लेखनीय उन्नति हुई थी। उस काल की कला-साधना में चित्र-फलक, भित्ति-चित्र, व्यक्तिगत या सामूहिक प्रति-कृतियाँ, यथार्थ चित्रण, कल्पना- चित्र, प्राकृतिक दृश्यों अथवा उद्यानों के चित्र, अदि सब ही विभिन्न प्रकार की चित्रकारी का सजीव सविस्तार विवरण मिलता है।

मध्यकालीन भारत में राजा भोज तथा उसके पूर्ववर्ती परमार राजाओं का शासन-काल मालवा के इतिहास का स्वर्ण युग था, जब वहाँ साहित्य-साधना के साथ अन्य सारी कलाओं की भी साधना होती थी। तब वहाँ चित्रकला की भी शैली विशेष का उद्भव हुआ था जो कई सदियों तक निरन्तर विकसित होती गई और जिसका यह स्वरूप हमें माण्डवगढ़ में तैयार किये गए हस्तलिखित ग्रंथों के चित्रों में देखने को मिलता है। मालवा सल्तनत

काल में नए प्रभाव के फलस्वरूप वहाँ की इस चित्रशैली का जो नूतन रूप निखरा वह तत्कालीन "मालवा शैली" के नाम से सुज्ञात है। आरंभिक मेवाड़ शैली और प्रारम्भिक बूँदी कलम पर इस मालवा शैली का प्रभाव सुस्पष्ट रूपेण देख पड़ता है। परन्तु अब तक इन चित्र-शैलियों के अध्ययन का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है, जिसका एक मुख्य कारण यही रहा है कि कहीं भी इन शैली विशेष में चित्रित हस्तलिखित ग्रंथों अथवा चित्र-फलकों का कोई समुचित संग्रह देखने को नहीं मिलता है।

ईसा की १८ वीं सदी में जब इस प्रदेश में सर्वत्र अराजकता फैली तब यहाँ के छोटे बड़े सब ही राज्यों की एकमात्र समस्या थी कि किस प्रकार अपना अस्तित्व बनाए रखा जावे, अत: तब कला के विकास की ओर कौन ध्यान देता ? अंग्रेजों के आधिपत्य की स्थापना के बाद भी स्वाधीनता-प्राप्ति तक यह प्रदेश अनेकानेक छोटे-बड़े राज्यों में बँटा रहा, जिसमें शांति और समृद्धि के होते हुए भी अत्यावश्यक साधनों तथा प्रोत्साहन की कमी के कारण तब चित्रकला की सुव्यवस्थित समुचित उन्नति नहीं हो पाई। किन्तु फिर भी यत्र-तत्र कुछ इने-गिने राजा-महाराजाओं के संरक्षण में वहाँ के चित्रकारों ने अपनी परम्परा को किसी न किसी प्रकार बनाए रखा। आज जब समूचा प्रदेश एक बड़ी राजनैतिक इकाई बन गया है, तब यह अत्यावश्यक हो गया है कि यहाँ सभी क्षेत्रों के उन विभिन्न बिखरे सूत्रों को सुव्यवस्थित कर उनकी अलग-अलग परम्पराओं और अभिव्यक्ति को ठीक तरह से समझ कर उनका सही मूल्यांकन किया जावे।

इस प्रदेश के इने-गिने संग्रहालयों में भी चित्रसंग्रह सर्वथा नगण्य हैं। उनके लिये अत्यावश्यक महत्वपूर्ण चित्रों के संग्रह के लिये कभी कोई व्यवस्थित आयोजन ही नहीं किया गया। अनायास ही जो चित्र किसी प्रकार वहाँ पहुँच गए उन्हीं को रख कर सन्तोष कर लिया गया और कई बार उनकी कला या महत्त्व को भी ठीक तरह समझने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया जाता है। नये-पुराने सब ही प्रकार के सैकड़ों-हजारों चित्र आज व्यक्तिगत संग्रहों या पुराने घरानों के जुजदानों में ही बन्द पड़े हैं। प्रदेश में तो उनकी कहीं कोई विशेष पूछ नहीं है; उसके विपरीत देश में अन्यत्र और विदेशों में सर्वत्र उनकी बड़ी माँग है। अत: कम-ज्यादा कीमत पर वे दिन-दिन अधिकाधिक संख्या में प्रदेश से बाहर तो अवश्य ही जा रहे हैं। अत: अपनी इस सारी अनोखी

सांस्कृतिक निधि के संग्रह और संरक्षण के लिये तत्काल ही प्रयत्नशील होना होगा ।

साहित्य—साहित्य और साहित्यकार, साहित्य के विभिन्न अंगों की गतिविधियाँ, उनके विभिन्न वादों तथा परम्पराओं आदि का यहाँ कोई विवेचन सर्वथा अप्रासंगिक ही होगा । यहाँ तो केवल प्राचीन साहित्य की खोज, संग्रह, सुरक्षा तथा अध्ययन आदि की ही चर्चा होनी चाहिये । यह तो एक सर्वमान्य सुज्ञात तथ्य है कि इस प्रदेश के कई एक क्षेत्रों में साहित्य-सृजन की बहुत ही सशक्त सुदृढ़ प्राणवान् परम्पराएँ रही हैं । फिर भी आज तब का अधिकांश साहित्य प्राप्य नहीं है । कोई एक शताब्दी पहिले तक यहाँ छापाखाने की सुविधाएँ प्राप्य नहीं थीं और हस्तलिखित प्रतियों द्वारा ही साहित्य का प्रसार हो पाता था, जिसको तैयार करवाने में अत्यधिक द्रव्य व्यय होता था । तब कोई सार्वजनिक पुस्तकालय या ऐसा कोई भी सार्वजनिक साहित्य संस्थाएँ तो होती नहीं थीं कि जो इन हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह कर उन्हें सर्वसाधारण को सुलभ करतीं । अतः ऐसा हस्तलिखित साहित्य व्यक्तिगत संग्रहों में ही प्राप्त होता था ।

देश-काल की बदलती हुई परिस्थितियों के फल-स्वरूप अथवा उन संग्रह-कर्ताओं के वंशजों की अयोग्यता, अरुचि या असमर्थता के कारण प्रायः ऐसे सब ही व्यक्तिगत संग्रह समय पाकर उपेक्षित हो नष्ट हो जाते हैं या रद्दी कागज के रूप में कौड़ियों के भाव बिक जाते हैं । आज हमारा समूचा समाज ऐसे ही बड़े विषम संक्रान्ति-काल में से गुजर रहा है और यहाँ बहुत बड़ी सामाजिक और आर्थिक उथल-पुथल हो रही है, अतः अब तक ठीक तरह सुरक्षित रहे प्रायः सब ही पुराने हस्तलिखित ग्रंथ-संग्रह आज अनिवार्य-रूपेण विनाश या छिन्न-भिन्न होने के खतरे में पड़ गए हैं । यही नहीं, आज हस्तलिखित ग्रन्थों को मोल लेने वाले भी बहुत हो गये हैं । अतः इस प्रदेश के उस सारे प्राचीन साहित्य को आगे भी प्राप्य करने के लिये इन्हीं हस्तलिखित प्रतियों की खोज और उनका समुचित संरक्षण सर्वथा अनिवार्य हो गया है ।

जहाँ तक ज्ञात है, इस प्रदेश में न तो कोई सार्वजनिक पुस्तकालय है और न कोई अन्य संग्रहालय जिसमें ऐसे हस्तलिखित ग्रंथों को एकत्रित किया जा रहा हो । अपनी आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस प्रदेश की साहित्यिक संस्थाएँ भी इस ओर से उदासीन ही रही हैं । दुर्भाग्यवश इस प्रदेश के शासनों

ने भी कभी इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और हस्तलिखित ग्रंथों की खोज के लिये नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, को कोई रु० २३००) प्रति वर्ष अनुदान के रूप में देकर ही इस नये मध्यप्रदेश के शासन ने भी अपने कर्तव्य की इति-श्री कर दी। नागरी प्रचारिणी सभा के प्रयत्नों के फलस्वरूप उत्तरप्रदेश से लगे हुए उत्तर-पूर्वी कई जिलों में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का महत्वपूर्ण कार्य हुआ है, परन्तु इस विशाल प्रदेश में यह प्रगति किसी प्रकार संतोषजनक नहीं कही जा सकती है। इस प्रदेश के पश्चिमी भाग में मालवा के सैकड़ों साहित्य-साधकों की कृतियों या उनके संग्रहों की तो अब तक किसी ने भी कोई खोज-खबर नहीं की है। यही नहीं कई जिलों में जो खोज की जा चुकी है उनके खोज-विवरण भी अब तक अप्रकाशित ही पड़े हैं। जब खोज-कार्य की यह स्थिति है तो इस प्रदेश के हजारों हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रह और संरक्षण की बात कौन सोच सकता है? उधर हमारे पड़ोसी राज्य राजस्थान ने जोधपुर में "राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान" की स्थापना कर राज्य के अन्य महत्त्वपूर्ण नगरों में उसकी शाखाएँ खोली हैं, और पिछले चौदह वर्षों में कोई दस हजार से भी अधिक हस्तलिखित ग्रंथ उक्त प्रतिष्ठान में एकत्र कर लिये हैं। सत्तर से भी अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का वहाँ से प्रकाशन हुआ है; तथा यही कार्य अधिकाधिक उत्साह, लगन और तत्परता के साथ आगे भी चलता रहे इसके लिये दृढ़ निश्चय और अत्यावश्यक आयोजन हो गया है।

हस्तलिखित ग्रंथों के साथ ही एक और प्रकार के बहुत ही महत्त्वपूर्ण परंतु अद्यावधि प्रायः सर्वथा उपेक्षित साहित्य की ओर भी आज यहाँ ध्यान दिलाना अत्यावश्यक समझता हूँ। प्रायः यह कहा जाता है कि मध्यकालीन हिन्दी में गद्य का अभाव ही था। ऐसा सोचने और कहने वालों से आग्रह करूँगा कि वे इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस द्वारा प्रकाशित "शिवाजीज विजिट टु औरंगजेब एट आगरा" शीर्षक ग्रंथ में संग्रहीत राजस्थानी पत्रों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें। तब उन्हें स्पष्ट देख पड़ेगा कि मुगलकाल में भी हिन्दी गद्य (राजस्थान गद्य उसका एक प्रकारान्तर मात्र है) कितना सजीव, सशक्त और भावपूर्ण था। अतः तत्कालीन ऐतिहासिक जानकारी के साथ ही मध्यकालीन हिन्दी गद्य को एकत्र करने के लिये पुराने कागज-पत्रों की खोज कर उनमें से महत्त्वपूर्ण उपयोगी कागज-पत्रों के संग्रह और संरक्षण का जल्दी ही आयोजन होना चाहिये।

आज सर्वत्र खाद्यान्नों के अभाव और उनके बढ़े हुए भावों की बड़ी

चर्चा है तथा शासन भी जनसाधारण के पेट की इस भूख को शांत करने के लिए व्यग्रता के साथ प्रयत्नशील है और तदर्थ सारे अत्यावश्यक साधन भी जुटा दिये हैं। परन्तु आज भी कोई जनसाधारण की उस उत्कट मानसिक भूख और ज्ञान-पिपासा की ओर यत्किंचित् भी ध्यान नहीं दे रहा है जो स्वाधीनता-प्राप्ति के समय से ही असाधारण-रूपेण जाग्रत हुई है। गाँव-गाँव से तदर्थ पाठशालाओं के लिए माँग उठी है। किन्तु यह ज्ञान-पिपासा केवल विद्यालयीन अध्ययन से ही संतुष्ट होने वाली नहीं है। इसके लिए तो पुनीत विशुद्ध साहित्यामृत और गहरी साधना से परिपूर्ण कलात्मक जीवन-रस की आवश्यकता है जो साधारणतया आज कहीं भी सुलभ नहीं है। यह विशेष प्रसन्नता की बात है कि इस प्रदर्शनी के द्वारा जनसाधारण को उनकी थोड़ी-बहुत बानगी प्रस्तुत की जा रही है। अतः आशा करता हूँ कि इस प्रदर्शनी से पूरा-पूरा लाभ उठाया जावेगा।
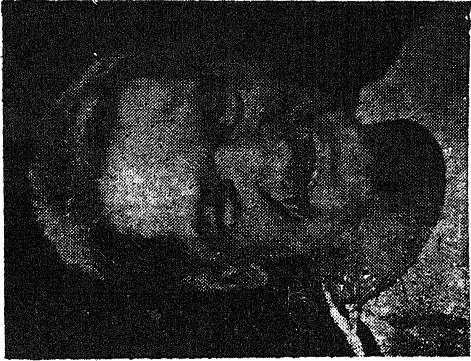
जिन्हें सम्मानित कर सम्मेलन गौरवान्वित हुआ

श्री मुकुटधर पाण्डेय

श्रीमती उषादेवी मित्रा

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
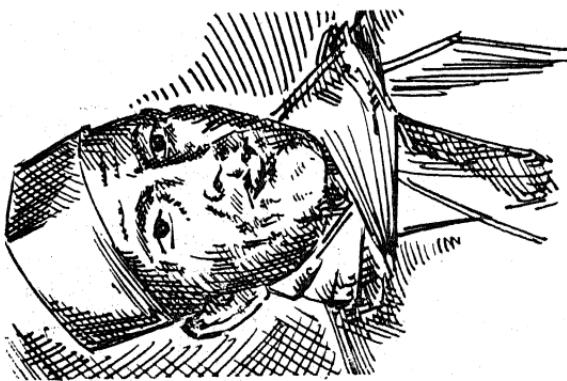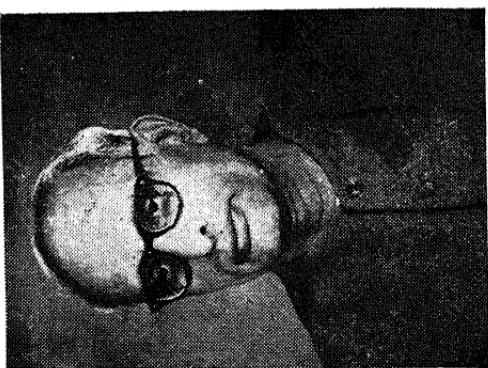
जिन्हें सम्मानित कर सम्मेलन गौरवान्वित हुआ

श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

श्री हरि कृष्ण 'प्रेमी'

विशिष्ट साहित्यकारों का सम्मान

[सम्मेलन के जबलपुर अधिवेशन के अवसर पर प्रदेश के छः विशिष्ट साहित्यकारों को उनकी साहित्य-सेवा के लिए सम्मानित किया गया। उन्हें जो अभिनन्दन-पत्र भेंट किये गये वे नीचे दिये जाते हैं।]

अभिनन्दन-पत्र

पं० मुकुटधर पाण्डेय

मान्यवर,

प्राक्छायावादी युग के छायावादी कवि के रूप में आप न केवल प्रान्त के अपितु सम्पूर्ण देश के गौरव-धन हैं।

आप प्रान्त के उस प्रतिष्ठित, प्रख्यात और प्रतिभा-सम्पन्न कुटुम्ब के प्रमुख प्रतिनिधि हैं जिसने रायगढ़ जिले के सुदूर बालपुर-ग्राम को साहित्य, इतिहास, पुरातत्व, संस्कृति और साधना का केन्द्र बनाया और एक छोटे से गाँव को बड़ी प्रतिष्ठा प्रदान की। लोचनप्रसादजी पांडेय, अनन्तरामजी पांडेय, मुरलीधरजी पांडेय हिन्दी-संसार के प्रमुख और विख्यात नाम हैं।

आपने काव्य-साधना में नवीन मोड़ देकर हिन्दी में युग-प्रवर्तक का कार्य किया। छायावाद सर्वथा आप के द्वारा गढ़ा हुआ हिन्दी का मौलिक शब्द है और आपके ही द्वारा सर्व प्रथम प्रयुक्त हुआ है। आप जन्मसिद्ध कवि और प्रकृति के अनन्य पुजारी हैं। महानदी की अतल जल-राशि, और चाँदनी-आवेष्ठित रात्रि में नौकाविहार, आषाढ़ की ऊष्मा में भोले किसानों का गीत-गान, सूर्यास्त का ग्रामीण सौंदर्य आपके कवि के जीवन-साथी हैं।

'कुररी के प्रति' न केवल आपकी अमर कृति है, वह हिन्दी काव्य-साहित्य की ऐसी अमर रचना है जो इतिहास बनाती है, साहित्य का नया मार्ग-दर्शन करती है और महावीर प्रसाद द्विवेदी के इतिवृत्तात्मक काव्य-युग को स्वच्छंदतावाद के आलोक से दीप्त करती है :—

"बता मुझे ऐ विहग विदेशी अपने जी की बात
पिछड़ा था तू कहाँ, आ रहा है जो इतनी रात ?"

आपने अपने स्वान्तः सुख और आत्म-संतोष के लिए साहित्य-तपस्या की। अनवरत लिखते रहे। थोड़ा-सा अंश ही प्रकाश में आया।

आप हिन्दी, संस्कृत और उड़िया के विद्वान हैं। सच्चे अर्थों में साहित्य-साधक हैं। प्रसिद्धि से कोसों दूर, आप प्रचुर साहित्य-सामग्री के प्रणेता साहित्य-मनीषी हैं।

आज आपका अभिनन्दन कर मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलन गौरवान्वित है।

विनीत
द्वारका प्रसाद मिश्र
अध्यक्ष
तथा
म. प्र. हिन्दी साहित्य-सम्मेलन
के समस्त सदस्यगण

जबलपुर
२०-१-६५

अभिनन्दन-पत्र

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

मान्यवर,

सन् १९११ में आप की 'भाग्य' शीर्षक कहानी 'हितकारिणी' मासिक पत्रिका, जबलपुर में प्रकाशित हुई थी। उसी जबलपुर में आज, जब मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन अपना अधिवेशन कर रहा है, आप की नवीनतम कृति, 'जिन्हें नहीं भूलूँगा', का प्रकाशन भी अभी-अभी हुआ है।

आपके जीवन के ये ५४ वर्ष सतत साहित्य तथा शिक्षा की सेवा में व्यतीत हुए हैं। आपके व्यक्तित्व में शिक्षा तथा साहित्य का विभाजन कर लेना अत्यन्त कठिन है। जब आप शिक्षक रहे, तब साहित्य-सेवा भी करते रहे। जब साहित्यिक रहे, तब शिक्षण-कार्य भी करते रहे। अर्ध शताब्दी से भी अधिक प्राचीन ऋषि-मुनियों के समान अनवरत ज्ञान-दान करने वाले महापुरुष के अभिनन्दन पर ऐसी अनुभूति है कि आपके व्यक्तित्व का आश्रय लेकर, साक्षात् शिक्षा तथा साहित्य का सम्मान किया जा रहा है।

सन् १९२० में जब आपने लगभग एक अपरिचित नवयुवक के रूप में लब्ध-प्रतिष्ठ 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का सम्पादन-भार ग्रहण किया, तब तथा हिन्दी-संसार अवाक रह गया। परन्तु दस वर्षों में आपकी योग्यता, विद्वत्ता तथा प्रतिभा की छाप समस्त हिन्दी संसार पर बैठ गई। आप पहले सम्पादक हैं जिसने छायावाद को खुले हृदय से प्रोत्साहित किया तथा स्वयं भी छायावादी कविताओं की रचना की, जो 'पंचपात्र' में प्रकाशित हैं। आप पहले सम्पादक हैं जिसने कथा-साहित्य को नया मोड़ दिया, जैसा कि आप के कहानी-संग्रहों और 'सरस्वती' में तत्कालीन प्रकाशित कहानियों से स्पष्ट है। आपने 'प्रायश्चित' नाटक का अनुवाद कर, इस दिशा में भी एक नया मार्ग सुझाया और इस काल में आपके अन्तर का शिक्षक भी पूर्णरूपेण सजग रहा। कुछ विद्यार्थियों को तो आप विधिवत् पढ़ाते ही थे। 'विश्व-साहित्य', 'हिन्दी साहित्य-विमर्श', 'प्रदीप' आदि पुस्तकें लिख कर आपने विश्वविद्यालयीन शिक्षा में समीक्षा-ग्रंथों की त्रुटि की पूर्ति की। ललित तथा गवेषणात्मक निबन्ध-लेखन तो आपकी विशेषता ही है, जिसमें आज भी कोई शिथिलता नहीं आई।

कारणवश 'सरस्वती' से अलग होकर आप विशुद्ध शिक्षा के क्षेत्र में आ गए, पर आप की लेखनी से निरंतर साहित्यिक ग्रन्थ-रत्नों का प्रसाद प्राप्त होता रहा।

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ने आपको 'साहित्य-वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की। मध्यप्रदेश ने आपको प्रांतीय साहित्य सम्मेलन का सभापति निर्वाचित किया। सागर विश्वविद्यालय ने आपको सम्मान्य डॉक्टरेट की उपाधि से विभूषित किया। राजनाँदगाँव ने एक विशाल समारोह कर आपका अभिनन्दन किया।

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलन आज आपका अभिनन्दन कर गौरवान्वित है।

विनीत

द्वारका प्रसाद मिश्र

अध्यक्ष
तथा
म० प्र० हिन्दी साहित्य-सम्मेलन
के समस्त सदस्यगण

जबलपुर
२०-१-६५

अभिनन्दन-पत्र

श्रीमती उषादेवी मित्रा

सम्मान्या,

आप न केवल जबलपुर की गौरव-गरिमा हैं, प्रत्युत प्रदेश के लिए अभिनंदन योग्य हैं।

आप उस प्रतिष्ठित, प्रख्यात और स्मरणीय बंगाली परिवार की कन्या हैं जिसने बंग-भू की साहित्यिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्रांति में विप्लवी सहयोग दिया। वारीसाल के अनाभिषिक्त जनाधिप अश्विनीकुमार दत्त और कवि सार्वभौम गुरुदेव रवीन्द्र के स्नेहपात्र सत्येन्द्र कुमार दत्त आपके प्रेरणा-स्रोत आत्मीय हैं। आपके पितामह नगर को आधुनिकता प्रदान करने वाले श्री वीरेश्वर दत्त थे और पिता-श्री के रूप में आपको हरिश्चन्द्र दत्त (बब्बा साहब) सदृश विलक्षण प्रतिभा की निधि प्राप्त हुई थी।

आप बंगला-भाषा की सिद्धहस्त लेखिका और कवयित्री हैं। आपका साहित्य-संस्कार बंगला कृतियों से हुआ। यह परम गौरव की बात है कि आप राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति प्रेरणापूर्वक आकृष्ट हुईं। हिन्दी के प्रति आपकी यह आसक्ति साहित्य-अभिवृद्धि के लिए वरदान सिद्ध हुई।

हिन्दी की आप सफल कहानी और गल्प-लेखिका हैं। आपकी कहानियाँ बंगला भाषा की सौंदर्य-शैली और प्रवाह-निर्मलता से परिवेष्टित हैं और स्वाभाविक ढंग से प्रयुक्त संस्कृत शब्दों की प्रचुरता से अलंकृत हैं। आपके उपन्यास जीवन के, पारिवारिक संघर्षों के और व्यक्ति के विश्लेषण के दर्पण हैं। हिन्दी-साहित्य में प्रवेश करते ही आपने अपनी साधना और कृत-संकल्पता से अल्पावधि में ही प्रमुख स्थान पा लिया। अमर-शिल्पी प्रेमचन्द का प्रोत्साहन और आशीष पा लेना आपकी लेखन-सफलता का उत्कृष्ट प्रमाण है।

आप मातृत्व की, स्नेह की, आत्मीयता की सप्राण प्रतीक हैं। प्यार-भरी हिन्दी की सरलता आपके पास बैठकर सुन लेना जीवन में प्रसन्नता के क्षण प्राप्त कर लेना है। वार्धक्य, अस्वस्थता, चिन्तासंकुलता के बीच आप आज भी साहित्य-सृजन में दत्तचित्त हैं, यह आपके हिन्दी-प्रेम और साहित्य-पूजा का परम श्रेष्ठ उदाहरण है।

आज आपका अभिनन्दन कर मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन गौरवान्वित है।

विनीत
द्वारका प्रसाद मिश्र
अध्यक्ष
तथा
म. प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन
के समस्त सदस्यगण

जबलपुर
२०-१-६५

अभिनन्दन-पत्र

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

मान्यवर,

आप न केवल जबलपुर के ही गर्व और गौरव हैं, प्रत्युत समस्त प्रदेश के श्रद्धाभाजक हैं ।

आप हिन्दी के परम समर्थक, सच्चे पोषक और कृत-संकल्प सेवक हैं । सारे संकटों, दिक्कतों और अड़चनों का सामना कर आपने 'प्रेमा' सदृश आदर्श साहित्यिक मासिक-पत्र का संपादन और प्रकाशन किया तथा हिन्दी के प्रति उस समय की नवीन पीढ़ी को प्रोत्साहित और प्रेरित किया है। आज के अनेक लब्धप्रतिष्ठ हिन्दी कवि, लेखक, कथाकार और आलोचक आपकी प्रेरणा के प्रतीक हैं।

आप सच्चे अर्थों में प्रतिभा-सम्पन्न कवि हैं। आपकी अनेक कवितायें हिन्दी-क्षेत्र की अत्यधिक लोकप्रिय रचनाएँ हैं। सरलता, स्वाभाविकता और भाव-सम्पन्नता से सम्पूरित अनेक रचनाएँ सर्वसाधारण को कंठस्थ हैं। चाहे वह पैना राष्ट्रीय व्यंग हो, चाहे गहन प्रेरणा की प्रेम-गाथा हो, चाहे पूजा की वंदना हो और चाहे उत्कृष्ट राष्ट्रीयता की तेजस्विता हो, आपने अपनी प्रतिभा-पूर्ण लेखनी का प्रभाव प्रत्येक क्षेत्र में प्रदर्शित किया है।

आप अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू के अनवरत अध्ययनशील विद्यार्थी, पाठक और विद्वान हैं। ज्ञानार्जन की इस विनम्रता भरी लगन और अधिकार-पूर्ण दत्तचित्तता से आपको साहित्य-क्षेत्र में पांडित्यपूर्ण मान्यता प्राप्त हुई है।

महाकवि गालिब पर और हिन्दी कहानियों पर लिखी हुई आपकी विद्वत्तापूर्ण आलोचनायें इस कथन के प्रमाण हैं। समय-समय पर आपने हिन्दी के पक्ष में, और आकाशवाणी की रीति पर जो लेख पत्र-पत्रिकाओं में लिखे हैं वे आपकी स्पष्टवादिता, निःस्वार्थपरता और सेवा-भावना के द्योतक हैं।

आपने प्रदेश के साहित्य, संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्रों में सक्रिय योग दिया और उनकी उन्नति और विकास के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। आपने विज्ञापनबाजी और आत्म-प्रचार की विषैली संक्रामकता से अपने को सदा अछूता रखा है; यह गुण जहाँ आपकी शालीनता का परिचायक है, नवीन पीढ़ी के लिए उत्कृष्ट मार्गदर्शन भी है।

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन आज आपको सम्मानित कर गौरवान्वित है।

विनीत

द्वारका प्रसाद मिश्र

अध्यक्ष

तथा

म० प्र० हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

के समस्त सदस्यगण

जबलपुर

२०-१-६५

अभिनन्दन-पत्र

श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'

मान्यवर,

मध्यप्रदेश की ग्वालियर-नगरी के उपनगर मुरार में जन्म पाकर अपनी साहित्य-साधना से आपने भारत का मुख उज्ज्वल किया है। लगातार चालीस वर्षों से आप लगन के साथ साहित्य का सृजन कर हिन्दी भाषा का भण्डार भर रहे हैं। मध्यप्रदेश इस बात पर गर्व किये बिना नहीं रह सकता कि उसने आपके जैसा साहित्य का साधक पाया जिसे काल और स्थान की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। आज प्रत्येक हिन्दी-भाषी को आप पर गर्व है।

जब आपने चालीस वर्ष पूर्व कवि के रूप में साहित्य की सेवा प्रारम्भ की थी, तब वर्तमान हिन्दी का रूप अपनी किशोरावस्था में था। आपकी कविताओं ने खड़ी बोली को निखारा। आपकी रचनाओं में जहाँ भावों, विचारों, अनुभूतियों और कल्पनाओं की उत्कृष्टता है, वहीं परिमार्जित भाषा

का लालित्य भी है। वर्तमान खड़ी बोली के निर्माताओं में आपको भी सदा याद किया जायगा। आपकी 'जीवन संगीत,' 'बलि-पथ के गीत,' 'नवयुग के गान' और 'भूमि की अनुभूति' आदि काव्य-कृतियाँ हिन्दी साहित्य की अमर रचनाएँ बन गयी हैं। आपने अपनी कविताओं में जहाँ मानव-हृदय की चिरन्तन अनुभूतियों को अंकित किया है, वहीं राष्ट्र और समाज की अपनी युग की वेदना और समस्याओं को भी चित्रित किया है तथा भारतीय युवकों को स्फूर्ति प्रदान की है। आपकी 'मेरे किशोर, मेरे कुमार' जैसी रचनाओं ने युवकों में जो उत्साह उभारा, वह सर्वविदित है।

एक प्रतिभाशाली कवि के साथ ही आप सफल नाटककार भी हैं, यह भी हमारे लिए कम गर्व करने की बात नहीं है। आपके 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक ने हिन्दी के नाटक साहित्य में नया कीर्तिमान स्थापित किया था और हिन्दी भाषा के आने वाले नाटककारों को पथ-प्रदर्शित किया था। आपकी नवीन कृतियाँ 'समर्पण' और 'गौतमनंद' आपकी साहित्य-साधना के विकसित पुष्प हैं। हमें विश्वास है कि आप हिन्दी के नाटक-साहित्य-भंडार को अपनी अमर कृतियों से भरते रहेंगे।

आपके साहित्य में भावनाओं के लालित्य के साथ ज्ञान की गरिमा का अद्भुत सम्मिश्रण है। आपकी 'चिन्तन-कण' निबन्ध-पुस्तक में एक उत्कृष्ट विचारक के दर्शन होते हैं।

पत्रकार के रूप में भी आपने हिन्दी भाषा और अपने देश की स्तुत्य सेवा की है। लाहौर से प्रकाशित 'भारती' पत्रिका ने, जिसके आप सम्पादक थे, आपकी सम्पादन-प्रतिभा को उजागर किया था। ललित साहित्य के साथ ही उस पत्रिका में भारतीय संस्कृति और दर्शन सम्बन्धी विचार धाराएँ पाठकों के सम्मुख आई थीं। ग्वालियर से प्रकाशित अर्द्ध-साप्ताहिक पत्र 'जीवन' में भी आपकी सम्पादन-कुशलता स्पष्ट प्रकट थी।

आज आपका अभिनन्दन कर मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन गौरवान्वित है।

विनीत

द्वारका प्रसाद मिश्र

अध्यक्ष

तथा

म. प्र. हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

के समस्त सदस्यगण

जबलपुर
२०-१-६५

अभिनन्दन-पत्र

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

मान्यवर,

आपने मध्यप्रदेश के गुना नामक कस्बे में जन्म लेकर जहाँ मध्यप्रदेश को गौरवान्वित किया है वहीं, अपनी साहित्य-साधना से सम्पूर्ण भारत का मुख उज्ज्वल किया है। आपकी 'आँखो में' काव्य-पुस्तक की भूमिका में श्री जगन्नाथ-प्रसाद 'मिलिंद' ने आपको वेदनावतार और काव्य-निर्झर सम्बोधित कर आपका यथार्थ ही परिचय दिया है। आपके हृदय से कविता नैसर्गिक रूप से प्रवाहित हुई है, जिससे हिन्दी भाषा का साहित्य परिप्लावित हुआ है। आपकी पहली ही कविता-पुस्तक 'आँखों में' प्रेम-धारा सी उमड़ी। उसके पश्चात 'जादूगरनी,' 'अनन्त के पथ पर,' 'प्रतिभा,' 'अग्नि-गान,' 'रूप-दर्शन,' 'रूपरेखा' 'वंदना के बोल' आदि काव्य-पुस्तकों ने हिन्दी भाषा के भण्डार की श्रीवृद्धि की। आपने अपनी कविताओं से जहाँ चिरन्तन भावनाओं को प्रकाशित किया, वहीं राष्ट्रीय चेतना और क्रान्तिकारी भावनाओं को स्फूर्त किया। आपकी 'अग्नि-गान' की कविताओं ने हजारों युवक-युवतियों को नयी प्रेरणा प्रदानकी।

आपने बहुत बड़ी संख्या में नाटकों की रचना कर हिन्दी भाषा के एक निर्बल अंग को पुष्ट करने का सराहनीय कार्य किया जिसके लिए हिन्दी भाषा आपकी चिर ऋणी रहेगी। आपके पहिले ही नाटक 'रक्षा-बन्धन' ने हिन्दी के साहित्य-जगत में एक हलचल पैदा कर दी थी। आपने अपने नाटकों द्वारा देश-प्रेम, वीरता और राष्ट्रीय एकता की जो त्रिवेणी बहायी है, उससे भारत का जन-जीवन धन्य हो गया है। आपके नाटक जहाँ उच्च कोटि के साहित्यिक ग्रंथ हैं, वहीं रंगमंच के अनुकूल हैं। भारत के श्रेष्ठतम नाटककारों में आपको प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है, यह गौरव की बात है।

पत्रकार के रूप में भी आपकी सेवाएँ सराहनीय हैं। 'त्याग-भूमि' अजमेर, 'कर्मवीर' खण्डवा के सह सम्पादक एवं 'भारती' लाहौर और 'रेखा' लाहौर के सम्पादक के रूप में आपने यश अर्जित किया है। आपने पंजाब जैसे प्रदेश में हिन्दी भाषा की सरिता बहायी और वहाँ रह कर न केवल साहित्य-भण्डार को भरा बल्कि अनेक हिन्दी के साहित्यकारों को मार्गदर्शन और प्रोत्साहन दिया।

आप उन व्यक्तियों में हैं, जो आदर्शों को छूने का न केवल प्रयास करते हैं बल्कि उनको अपने जीवन में उतारने का निरन्तर प्रयत्न करते हैं। आपने राष्ट्रीय कवितएँ और नाटक लिखकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझ ली बल्कि स्वयं राष्ट्रीय संग्राम में भाग ले कर कई बार कारावास की यातनाएँ सहीं तथा कथनी और करनी में अभेद प्रकट किया।

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन आज आपको सम्मानित कर गौरवान्वित है।

विनीत
द्वारका प्रसाद मिश्र
अध्यक्ष
तथा
म० प्र० हिन्दी साहित्य-सम्मेलन
के समस्त सदस्यगण

जबलपुर
२०-१-६५

—यह कटु सत्य है कि हिन्दी न केवल राष्ट्रीय एकता का सबल साधन है अपितु सांस्कृतिक एकता का भी सर्वोच्च साधन है।

—हिन्दी अपनी सरलता और सुगमता के कारण सर्वजन ग्राह्य है।

—हिन्दी भारतवर्ष की पचास प्रतिशत जनता की भाषा है एवं दुनिया में बोलने वालों की संख्या के आधार पर विश्व में हिन्दी का स्थान तीसरा है।

साहित्य परिषद

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन में आयोजित साहित्य परिषद की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं समालोचक आचार्यप्रवर पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने की। इस परिषद में साहित्य के विविध विषयों पर विद्वान एवं विषय के अधिकारी व्यक्तियों द्वारा निबन्ध वाचन, विचार-विनिमय एवं भाषण हुए। उल्लेखनीय निबन्ध थे (१) सुमित्रा नन्दन पन्त की काव्य दिशायें—डॉ प्रेमशंकर तिवारी (२) नवीन जी का काव्य कृतित्व—डॉ लक्ष्मी नारायण दुबे (३) नयी कविता: कुछ प्रश्न—प्रो० प्रमोद वर्मा (४) आजकी कहानी : प्रवृत्तियाँ और उपलब्धियाँ—श्री कैलाश नारद। विस्तृत रूप से परिचर्चा में भाग लिया श्री गुरुप्रसाद टंडन, डॉ. उदयनारायण तिवारी, प्रो. विजय शुक्ल, प्रो. श्रीमती कमला जैन, प्रो. श्रीषकुमार, प्रो. हनुमान वर्मा, श्री ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी, ब्योहार राजेन्द्र सिंह, डॉ. बाबूराम सक्सेना, हरिकृष्ण प्रेमी, डॉ राजबली पाण्डेय ने।

पं. नन्ददुलारे वाजपेयी

साहित्य परिषद में डॉ. बाबूराम सक्सेना ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि साहित्यकार दो प्रकार के होते हैं एक तो प्रतिभावान और दूसरे वे जो परिश्रम से साहित्यकार बनते हैं। आपने आवश्यकता प्रतिपादित की कि ऐसे साहित्यकारों को भारती के उन अंगों की पूर्ति करना चाहिये जो अधूरे पड़े हैं या जिनकी पूर्त्ति नहीं हो सकी। आज के साहित्यकार कुछ चुस्की लगाकर या कुछ घोंटकर ही अपना मूड बनाते हैं जबकि वाल्मीकि ने कभी आवेश में नहीं लिखा, वे चाहें तो इससे कुछ सीखें। आचार्य डॉ. राजबली पाण्डेय ने कविवर पन्त को प्रबल अनुभूति के सशक्त शिल्पी निरूपित करते हुए साहित्य के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए व्यक्त किया कि काव्य का

तत्व सत्यं शिवम् सुन्दरम् है किन्तु आजकल लोग तथ्य को सत्य समझते हैं जबकि तथ्य के अनेक सत्य हैं । इन्हें समझने की आवश्यकता है ।

पं. ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी ने कहा कि नर्मदा के समान कवि की जीवन साधना अविच्छिन्न होना चाहिये और आलोचक को किसी एक पंक्ति की नहीं वरन् समग्र साहित्य साधना की ओर ध्यान देना चाहिये। विश्व के किसी भी देश के अच्छे विचार बिना भेदभाव के ग्रहण करना और उन्हें समाहित करना उचित है और साहित्यकारों के सामने जो अनेक प्रश्न हैं उनका भी समाधान हो इसकी अनिवार्यता को भी समझना चाहिये । श्री ब्यौहार राजेन्द्र सिंह ने कहा कि वह कवि श्रेष्ठ है जो ऐसे काव्य की रचना करता है जिसे जन समाज अपने कंठ में उतार ले । युग-युग से ऐसे कवि जिनने हमारी भावनाओं को जाग्रत किया और प्रेरणा दी उन्हें हम समादरित करना सीखें । श्री गौरी शंकर द्विवेदी ने श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के रोचक संस्मरण प्रस्तुत किये । श्री हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने साहित्य जीवन की ओर इंगित करते हुए कहा कि मैं जो बोलता हूँ वही लिखता हूँ, और उदाहरण देते हुए कहा कि आलोचक चाहे जो कहे साहित्य पहाड़ियों से फूटे झरने की तरह है जो साहित्यकार द्वारा सृजित होता है । इसके सही मूल्यांकन का कार्य ही निष्पक्ष आलोचक की अनिवार्यता है ।

और अन्त में साहित्य परिषद का समापन करते हुए पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा—"आज इस अधिवेशन की साहित्य परिषद में जो निबन्ध प्रस्तुत किये गये वे ध्यान देने योग्य हैं । साहित्य को अधिक दिशाओं में विभक्त न कर साहित्यिक विषयों और गतिविधियो के सम्बन्ध में साहित्य परिषद व गोष्ठियों के माध्यम से विचार करना ही श्रेयस्कर है । कवि और लेखकों के सृजन में समालोचक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है । सब जन समाज पर छोड़ देने से समीक्षकों का कार्य ही क्या रह जायेगा। साहित्य साधना पर साहित्यिक समाज व्यापी हो यह सम्भव नहीं और इसलिये समालोचक की जरूरत है ।

नई कविता से कई समस्याओं की सृष्टि हो रही है । हमें काव्य का उच्चतर लक्ष्य देखना है । व्यक्तिगत सन्दर्भों के परिपेक्ष्य में रखकर यह नहीं देखना है । अपनी कुंठाओं को काव्य में प्रतिपादित कर हम मानस को भ्रमित और काव्य की सार्वजनीनता को खण्डित करने का प्रयत्न न करें । वस्तुस्थिति को देखते हुए वर्तमान की उपेक्षा कर मात्र पाश्चात्य शैली को अपनाने वाले

सतर्क रहें और यह देखें कि समृद्ध चेतना के साहित्य में परीक्षा के बाद ही उत्कर्ष और उपादेयता आती है और इसलिये यथार्थवादी दृष्टिकोण भी विश्वजनीन होना अनिवार्य है। भारतीय शास्त्र में कवि की महत्ता सर्वदेशीय प्रतिक्रिया में है। प्रशस्त लक्ष्यों को लेकर आने वाले साहित्य दीर्घजीवी बनाकर सचेनता के साथ साहित्य को परखना चाहिये। साहित्य सृष्टि का लक्ष्य और प्रेरणायें क्या हैं इसे समझे बिना केवल शैली पर चलकर आगे बढ़े तो कार्य अधूरा रहेगा। वस्तु की उपेक्षा और शैली की प्रमुखता वाला साहित्य श्रेष्ठ नहीं हो सकता।"

●
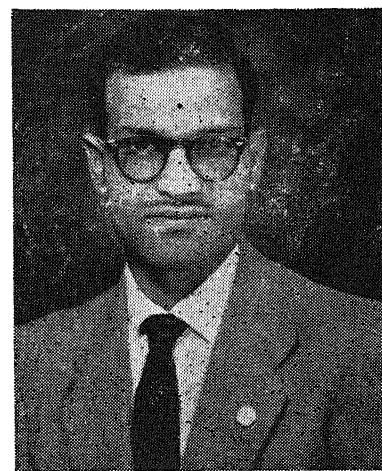
—हिन्दी भाषा को संसार की सर्वश्रेष्ठ लिपि 'देवनागरी' प्राप्त है।

—हिन्दी को अपने विकास के लिये भारतभूमि में चौदह सम्पन्न भाषाओं का नैसर्गिक भण्डार प्राप्त है एवं संस्कृत सरीखी पूर्ण विकसित भाषा की छत्र-छाया वरदान स्वरूप उपलब्ध है।

— 'पढ़ो लिखो कोऊ लाख विधि,
भाषा बहुत प्रकार;
पै जबही कछु सोचिबो
निज भाषा अनुसार।'

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

सुमित्रानंदन पंत की काव्य दिशाएं

डॉ० प्रेमशंकर
हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय

श्री सुमित्रानंदन पंत के काव्य-सृजन ने समय की इतनी लम्बी यात्रा की है कि उस पर अनेक प्रकार के प्रभाव न पड़ें, यह संभव नहीं दीखता। द्विवेदी-युग जब अपने उत्कर्ष पर था, उस समय से ही अपने काव्य का आरंभ कर, वे छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नयी कविता के दौर तक सृजन-रत रहे हैं। सभवतः मैथिलीशरण गुप्त का ही व्यक्तित्व ऐसा था जो बराबर एकरस बना रहा और जिस पर काव्य-आन्दोलनों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। उनके कतिपय भावुक गीत अपवाद ही कहे जायँगे। पर पंत जी के समस्त सृजन पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी काव्य-दिशा समय के साथ मोड़ लेती गई है और विभिन्न आन्दोलनों ने उन पर सक्रिय प्रभाव डाला है। किसी कवि के सृजन को खंडित करके देखना संभवतः बहुत प्रशंसनीय नहीं है क्योंकि जहां इससे उसकी रचना-संबंधी अनेक-रूपता का परिचय मिलता है वहीं यह आक्षेप भी किया जा सकता है कि इसमें कोई मेरुदण्ड अथवा मूलबिन्दु नहीं है। श्रेष्ठ रचनाकार अपने समय-प्रवाह से इतने असम्पृक्त नहीं हो जाते कि उन पर अनेक प्रकार के प्रभाव न पड़ें किन्तु उनके प्रभाव-ग्रहण की प्रक्रिया साधारण व्यक्तियों से भिन्न होती है। ग्रहण-

शीलता आदि एक ओर उदार ओर जागरूक चेतन का गुण है तो नितांत दुर्बल मानस का उससे अभिभूत हो जाना दूसरे पक्ष की ओर भी संकेत करता है ।

पन्त की परिवर्तित काव्य-दिशाओं का कारण उनका कोमल संवेदन अथवा अतिरिक्त ग्रहणशीलता का भाव है। जहां तक प्रभाव-ग्रहण का प्रश्न है, रचनाओं के कई वर्ग देखे जा सकते हैं। एक वर्ग वह होता है जो अपने चारों ओर ऐसे काल्पनिक जगत की सृष्टि कर लेता है कि उसमें किसी भी अन्य विचार का प्रवेश संभव नहीं होता। ऐसी रचना समाज से कटी हुई होती है और क्रमशः कलात्मकता की ओर अग्रसर होती जाती है। अधिक से अधिक उसमें एक सीमित जीवन के कुछ दृश्य देखने को मिल सकते हैं। इसमें कलात्मक उत्कर्ष के धरातल भी देखे जा सकते हैं, पर उसमें जीवन स्पन्दनों का संस्पर्श नहीं होता। इसके विपरीत रचनाओं का एक ऐसा प्रकार होता हैं जो समय के प्रवाह में इतनी तीव्रता से प्रवाहित हो जाता है, जैसे उसका अपना कोई आधार ही न हो। ऐसी पिच्छल भूमि पर खड़े होने वाला सृजन कभी कभी सामयिक बनकर रह जाता है और उसमें काव्य के स्थायी प्रतिमान नहीं मिलते। प्रायः ऐसा भी होता है कि यह ग्रहणशीलता बतौर-फ़ैशन होती है और कवि की मूल-चेतना से उसका अधिक गहन रागात्मक सम्बन्ध नहीं होता। स्वाभाविक है कि ऐसी कृतियों में एक वाह्यारोपण स्पष्ट दिखाई देता है। श्रेष्ठ रचनाकार समय के प्रवाह से अभिभूत नहीं होते और न उससे आँख ही मूँद लेते हैं। वे इतिहास और युग के भीतर झाँक लेने की सामर्थ्य रखते हैं और उन सूत्रों पर उनकी दृष्टि चली जाती है जो सयम-प्रवाह के मूलाधार हैं। अनुवीक्षणयंत्र जैसी पारदर्शी चेतना उनके पास होती है। वे समस्त प्रभावों के मध्य एक ऐसे सृजन की योजना करते हैं जो केवल वर्तमान तक जीकर समाप्त नहीं हो जाती। उन्हें वर्तमान के साथ आगे की आग का भी अन्दाज रहता है। हिन्दी में महाकवि निराला में भाव और शिल्प का जितना वैविध्य है, उतना संभवतः किसी अन्य कवि में कठिनाई से प्राप्त होगा किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे खण्डित चेतना के रचनाकार हैं और उनके सृजन का कोई मेरुदण्ड नहीं है ।

पंत का काव्य लगभग पांच, छः दशकों तक से सम्बन्ध रखता है और हिन्दी कवियों में उन्होंने सर्वाधिक ग्रहणशीलता का परिचय दिया है। प्रश्न किया जा सकता है कि क्या पंत की यह परिवर्तित काव्य-दिशा उनक व्यक्तित्व विकास का परिचायक है अथवा इससे उनके टूटते व्यक्तित्व की झाँकी

मिलती है ? कुछ समीक्षक आज भी पंत के आरंभिक काव्य को उनका सर्वोत्तम स्वर स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि आगे चलकर पंत जी कवि के बदले कलाकार अधिक हो गए हैं, किन्तु पंत जी के प्रशंसक उनके काव्य की विभिन्न परिवर्तित दिशाओं में एक निरन्तर विकासमान व्यक्तित्व का स्वरूप देखते हैं, पंत के समस्त काव्य विकास की दिशाओं पर एक दृष्टि डालकर ही हम संभवतः यह जान सकेंगे कि उनके सृजन का मूल स्वर क्या है ?

अधिकांश आधुनिक कवियों की भाँति पंत के काव्य का प्रारम्भ वैयक्तिक प्रेम-भावना मात्र-से नहीं हुआ। प्रायः देखा जाता है कि वर्तमान युग में कवि आरंभिक दौर में अपनी नितांत वैयक्तिक अनुभूतियों का प्रकाशन करते हैं और क्रमशः इनका उन्नयन करते हुए, स्वयं को प्रसार देते हुए, अन्य भूमियों पर आते हैं। पंत का जन्म कूर्मांचल प्रदेश में हुआ और वे प्रकृति के नैसर्गिक वैभव के इतने समीप थे कि उनका प्रथम रागात्मक संबंध इसी से स्थापित हुआ। कवि की कोमल वृत्तियां प्रकृति-सौन्दर्य में बार-बार रमती थीं और उसकी एकांतप्रियता ने प्राकृतिक दृश्यों के प्रति आश्चर्य, जिज्ञासा, कुतूहल के भावों का प्रवेश कराया। आगे चलकर जब पंतजी में स्वच्छंदतावादी भावना आई तब यही प्रकृति-सहचरी उनकी प्रिया बनी और इस प्रकृति-सुन्दरी को उन्होंने अपनी भावनाएँ अर्पित कीं। इस प्रकार पंत जी की आरंभिक प्रकृति-कविताओं में और उसके बाद लिखी हुई इसी प्रकार की रचनाओं में अन्तर दिखाई देता है। १९१८ से १९२० तक की प्रारंभिक रचनाओं का संकलन 'वीणा' है। 'वीणा' के प्रकृति-चित्र शिल्प की दृष्टि से भले समृद्ध और अलंकृत न हों किन्तु वे अधिक अकृत्रिम और शुद्ध हैं। वहां कवि का प्रकृति के प्रति एक विस्मय भाव है जिस कारण प्राकृतिक दृश्यों में उसे एक रहस्यमय आध्यात्मिक छाया का भास भी होता है। एक प्रार्थना, उपासना-भाव भी 'वीणा' की कविताओं में विद्यमान है, जिससे कवि की समर्पण भावना का पता चलता है। इन प्रयोगकालीन कविताओं का दौर शीघ्र समाप्त हो गया और पंत जी के सृजन की महत्वपूर्ण सूचना हमें १९२६ में प्रकाशित 'पल्लव' से प्राप्त होती है। इसकी भूमिका छायावादी काव्य का एक प्रभावशाली दस्तावेज है। इसे आधुनिक काव्य का घोषणापत्र कहा जा सकता है, जिसने अपने मंतव्य को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया। 'पल्लव' की कविताएँ अधिक माँसल भूमि पर प्रतिष्ठित हैं और वहाँ हमें प्रकृति-सम्बन्धी भावनाएँ भी मिश्रित रूप में दिखाई देती हैं। इसके पूर्व 'ग्रंथि' की रचना हो चुकी थी, जिससे कवि की

वैक्तिक प्रम-भावना का पता चलता है। इस आत्मकथात्मक वियोग-प्रधान कविता में जैसे पंत ने स्वयं के बहुत से भावोच्छ्वासों को निश्शेष कर दिया था और इसलिए आगामी कविताओं में वैयक्तिक प्रेमभावना परोक्ष रूप से ही अधिक व्यक्त हुई है। 'पल्लव' की कविताओं में जीवन का संस्पर्श अधिक है और इसी कारण इसमें अनुभूतियों का मिश्रित स्वरूप हमें दिखाई देता है, जबकि इसके पूर्व कवि को हम मुख्यतया कल्पना की भूमियों पर और प्रकृति के परिवेश में विचरण करते देखते हैं। इस संकलन की भूमिका में जब पंत जी ने कहा था कि "कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है" तब वे अपने भाव-जगत को विस्तार देने की बात सोच रहे होंगे। 'पल्लव' की प्रकृति मानव-सापेक्ष्य होकर आई है और उसकी स्वतन्त्र सत्ता को व्यंजित करने की चेष्टा कवि ने अधिक नहीं की। इतना ही नहीं, आगे चलकर छायावादी काव्य में जिस जड़ता में चेतनता का आरोप कहीं-कहीं अतिरिक्त मात्रा में किया जाने लंगा, उसका रागात्मक प्रयोग इन कविताओं में दृष्टव्य है। प्रकृति के दृश्यों को जीवंत और माँसल प्रतीकों, रूपकों में बदल देने का कार्य यहाँ आरम्भ हो गया है। यह प्रयास केवल उपमा अथवा अलंकरण तक सीमित नहीं है, उसको कवि ने जीवन से घनिष्ट रूप में सम्बद्ध किया है। यह भी सच है कि आरम्भ में पंत जी की दृष्टि प्रकृति के मनोरम, कोमल पक्षों पर ही अधिक रही है, पर आगे चलकर जब पल्लव-काल में ही 'परिवर्तन' जैसी क्रान्ति-समन्वित कविताओं की रचना हुई तब हमें ज्ञात हुआ कि कवि की दृष्टि फूल के साथ अंगारों पर भी गई है। महाकवि निराला ने 'परिवर्तन' को "पूर्ण कविता" कहकर सम्बोधित किया है, यह उसके लिए एक गौरवपूर्ण प्रशंसापत्र है। "पल्लव" में हम पंत के विकासमान व्यक्तित्व को प्रकाशित पाते हैं क्योंकि एक साथ उसमें उच्छ्वास, आँसू जैसी करुण भावनाएँ तथा परिवर्तन के अग्निकण प्रस्तुत हैं। वास्तव में "परिवर्तन" कविता से पंतजी के आगामी चरण का एक संकेत मिल जाता है, जहाँ वे जीवन की कोमल अनुभूतियों और कल्पना-जगत को छोड़कर धरती के कठोर वास्तविक यथार्थ का भी सम्पर्क करते हैं। 'पल्लव" पंत के प्रथम चरण की प्रतिनिधि कृति है क्योंकि इसमें वे अपने व्यक्तित्व को भी समाहित अभिव्यक्ति देने में यत्नशील हैं। भाषा का परिमार्जन और अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता भी यहाँ विद्यमान है। "पल्लव" का विकास "गुंजन" में हुआ जिसमें १९२६ के अनंतर लगभग पाँच-छः वर्षों की रचनाएँ संग्रहीत हैं। "गुंजन" का कवि चिन्तन-मनन की ओर भी उन्मुख दिखाई देता है। उसने जो दृश्य देखे हैं, जो अनुभूतियाँ जुटाई हैं, जिस जीवन

के संपर्क में आया है, उसका विश्लेषण आरंभ करता है। सुख-दुख में समन्वय कराने का उसका प्रयत्न एक 'मनोवांछित सुन्दर कल्पना' ही है। कविताओं में दर्शन का यह प्रवेश जहाँ पंत के काव्य को एक वैचारिक आधार देता है, वहीं कुछ सुन्दर कविताएँ अंत में आते-आते विचारों से बोझिल हो गई हैं। दृश्य-चित्रण की दृष्टि से 'नौका-बिहार' और 'एक तारा' श्रेष्ठ कविताएँ हैं। कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति अपनी कल्पना के साथ यहाँ सार्थक व्यंजना प्राप्त करती है, पर कविताओं की अंतिम निष्कर्षवादी पंक्तियाँ वर्ड्सवर्थ को भी पीछे छोड़ जाती हैं। "पल्लव" में कल्पना की प्रधानता थी यद्यपि कवि की दृष्टि यथार्थ जगत की ओर जाने लगी थी किन्तु 'गुंजन' में कतिपय रोमाण्टिक कविताओं के होते हुए भी विचारणा की प्रमुखता हो गई है। "युगांत" (१९३४-३५) में आकर बौद्धिकता का भार काव्य पर कहीं-कहीं इतना बढ़ जाता है कि कवि अनुभूतियों और भावों के रसात्मक प्रकाशन के स्थान पर विचारों को छन्दबद्ध करने लगता है। गाँधीवाद के प्रति पंतजी का जो आकर्षण है उसके कारण एक आदर्शवादी, आध्यात्मिक दृष्टि निर्मित होने लगती है। बापू को निवेदित पंक्तियाँ स्वयं इसका प्रमाण हैं। इस वैचारिक छंद-योजना के होते हुए भी संध्या, तितली, वसंत, शुक्र आदि के सरस चित्र हैं जो बताते हैं कि कवि आज भी अपने प्रकृति-प्रेम को भूल नहीं पाया है। पर जीवन में और भी तो तकाजे होते हैं। इसीलिए "युगांत" में सामाजिक यथार्थ-संपर्क के संकेत मिलते हैं। "वीणा" और "युगांत" के बीच "ज्योत्स्ना" नामक जो नाटिका रची गई उसका पंत जी के वैचारिक विकास जगत में एक विशेष महत्व है। इससे शैली के "प्रोमेथियस अन्बाउण्ड" का स्मरण हो जाता है। "ज्योत्स्ना" के पात्र अमूर्त विचारों भावनाओं के प्रतिनिधि प्रतीक पात्र हैं। ये अशरीरी पात्र कवि की कल्पना और विचारणा के प्रकाशन के लिए निर्मित हुए हैं और उनमें नाटकीयता का गुण नहीं है। "ज्योत्स्ना" में जिस 'यूटोपिया', आदर्श कल्पना-राज्य का स्वप्न पंत ने देखा है, उसे पुस्तकीय कहकर आगे बढ़ जाना होगा। इस प्रकार पंत के प्रथम काव्य चरण के समन्वित स्वरूप से यह ज्ञात होता है कि आरंभ की प्रकृति-प्रेम-भावना क्रमशः मानवीय सौंन्दर्य की ओर उन्मुख होती है और अपनी अतिरिक्त कल्पनाप्रियता के कारण वे कुछ आदर्श विचारों से उलझते हैं। प्रशंसकों ने इसे उनका 'नवमानववाद' कहा है, पर इसकी रेखाएँ इतनी काल्पनिक हैं कि हमारे समक्ष मूर्तविधान उपस्थित नहीं होता। आरंभिक काव्य चरण के दो मुख्य केन्द्र हैं—प्रकृति और मानव।

पंत के काव्य का द्वितीय चरण "युगवाणी" (१९३७-३८) के प्रकाशन

से स्वीकार किया जाता है क्योंकि यहाँ सामाजिक यथार्थ का ग्रहण स्पष्टता प्राप्त करता है, जिसके आरंभिक संकेत "युगांत" में दिखाई देते हैं। पंत की कल्पना प्रिय प्रवृत्तियाँ, और कोमल संवेदन सामाजिक यथार्थ के इतना निकट किस प्रकार आ सके, यह भी कभी-कभी आश्चर्यजनक प्रतीत होता है किन्तु यह उनकी ग्रहणशीलता ही है जो युग के आमंत्रण पर इस ओर चली आई है। पंत के काव्य के जिस नये चरण का प्रकाशन "युगवाणी" और "ग्राम्या" (१९३९-४०) में हुआ है, उसके भी दो पक्ष हैं। स्पष्ट है कि पंत जी के सामाजिक यथार्थ की दो सीमाएँ हैं, जिनका सम्बन्ध गांधी और मार्क्स के व्यक्तित्व से है। इसमें भी प्रमुखता गाँधी-व्यक्तित्व की है। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में गाँधीजी का जो व्यक्तित्व रहा है, उससे भी अधिक व्यापक उनका जो सार्वभौमिक स्वरूप है, उस ओर कवि ने अधिक देखा है। गाँधी पर लिखी गई कविताएँ पंत की इस दृष्टि का परिचय देती हैं। यदि गाँधी के राष्ट्रीय व्यक्तित्व तक ही वह सीमित रहता तब संभव है कि केवल कुछ देश-प्रेम सम्बन्धी कविताएँ लिखकर वह संतुष्ट हो जाता। पर गाँधी के माध्यम से पंत जी की दृष्टि ग्रामीण जीवन की ओर गई, यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है। ग्राम-जीवन के जो चित्र कवि ने "ग्राम्या" में खींचे हैं वे उनकी संवेदनशीलता के परिचायक हैं। ग्रामवधू, ग्रामनारी, वृद्ध के जो चित्र हैं उनमें कवि केवल वर्णन-कर्ता नहीं है, वहाँ वह उन दयनीय दृश्यों के साथ एक तादात्म्य भाव स्थापित करता है। वहाँ कवि ने अपनी ममता और सहानुभूति इन धोबी, चमार, कहार पात्रों को दी है। पंत के सामाजिक यथार्थ का दूसरा पक्ष मार्क्स से संबंध रखता है। मेरा विचार है कि पंत जी मार्क्स के व्यक्तित्व से प्रभावित थे, और उन्होंने इसे महान मनीषी कहकर अपनी भावनाएँ भी निवेदित की हैं, पर मार्क्सवाद के प्रति उनका कोई विशेष आग्रह कभी नहीं रहा। मार्क्सवादी सामाजिक क्रांति के प्रति उनकी एक भावात्मक दिलचस्पी रही है पर उसके समस्त जीवन दर्शन को स्वीकार करना पंत जी जैसे कल्पना प्रिय व्यक्ति के लिए कठिन है। इसीलिए वे भौतिकवाद से पूर्ण सन्तुष्ट न होकर गाँधीवाद से उसका एक गठबन्धन चाहते हैं, लोग इसे समन्वय मार्ग कह सकते हैं। पर इस प्रकार का, विरोधी जीवन दृष्टियों का मिलन कितना कृत्रिम होता है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं। मार्क्सवाद की वैज्ञानिक दृष्टि को समझे बिना जो लोग समाजवादी स्वर्ग के भावनामय स्वप्न देखने लगते हैं, वही इस प्रकार के अनमेल मिलन की बात कह सकते हैं। मार्क्सवाद और गाँधीवाद की पृथक-पृथक

जीवन-दृष्टियाँ हैं और उनके समन्वय की आकांक्षा जब पंत जी करते हैं, तब वे ऐसा समझौता चाहते हैं जो कल्पना की भूमि पर ही अधिक मनोरम लग सकता है।

स्थिति यह है कि पंत जी के व्यक्तित्व का निर्माण कुछ ऐसी सवेदनशील और कोमल रेखाओं से हुआ है कि उसमें सामाजिक यथार्थ के, विशेषतया मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के पूर्ण प्रवेश की गुंजायश ही नहीं है। उन्होंने इस प्रयास में भी मार्क्स से अधिक प्रेरणा गाँधी से प्राप्त की है। उन्होंने तो जैसे युग के वातावरण से अभिभूत होकर अपनी सहानुभूति कुछ क्षणों के लिये सामाजिक जीवन को दे दी थी, बस। इसीलिए जब पंत जी "स्वर्ण किरण" (१९४४-४५) के साथ कल्पना लोक में चले गए और अरविंदवाद से अभिभूत हो गए, तब जैसे उनके काव्य की यह स्वाभाविक परिणति थी। जीवन की कठोर, कण्टकित भूमि पर उनको कोमल संवेदन के लिये स्थान कहाँ ? संभवतः अतिरेक की विवशताएँ भी अन्य प्रकार की होती है। पत जी अपनी कोमल अनुभूतियों और कल्पना-मोह के कारण सामाजिक यथार्थ से दूर हटते गए और सामाजिक यथार्थ में पूरी तरह रमता हुआ भी निराला का परम विद्रोही स्वरूप किसी वाद का आग्रही न बन सका। आज जब हम पंत जी की सामाजिक यथार्थ संबंधी कविताओं को देखते हैं तो लगता है जैसे ये दो-चार लाल छींटे हैं जो उनकी श्वेत चादर पर पड़ गए हैं।

पंत के काव्य का तीसरा चरण सर्वाधिक विवाद का विषय रहा है, पर सबसे दीर्घकाल उसी ने पाया है। १९४४-४५ की कविताओं का संकलन "स्वर्ण किरण" नाम से प्रकाशित हुआ, जिसने पंत को अरविंदवाद से प्रभावित आध्यात्मिक चर्या के कवि रूप में हमारे सामने रखा। पंत के व्यक्तित्व में जो भावप्रवणता थी, उसे देखकर उनका इस प्रकार अन्तर्मुखी हो जाना बहुत आश्चर्यजनक नहीं लगता, पर एक तथ्य और भी है जिसने कवि को इस ओर प्रेरित किया है। लंबी बीमारी ने पंत जी को झकझोर दिया था, और उन्होंने राजरोग के क्षणों में जैसे मृत्यु का एक भावात्मक साक्षात्कार कर लिया था। इस अनुभव ने मानो एक प्रकार से कवि को अन्तर्मुखी कर दिया। ऐसे अवसर पर बिरले ही विद्रोही व्यक्तित्व होते हैं जो पराभव स्वीकार नहीं करते। मेरे विचार से पंत के नये काव्य चरण ने उन्हें विचारणा और दर्शन की ऐसी भूल-भुलइयों में भटका दिया कि वे "लोकायतन" के दीर्घ आकार में भी उससे मुक्त न हो सके। प्रबंध काव्य और वह भी "लोकायतन" जैसे वृहदाकार ग्रंथ

में कवि के लिए अवसर था कि वह अपने समग्र व्यक्तित्व को समाहित रूप में वाणी दे। पर यहाँ भी कवि जैसे सूचना के लिए बहुतेरी बातें तो सुना गया है, पर वह सब उसकी अनुभूति के माध्यम से होकर नहीं आया है, उसने "रसदशा" नहीं पाई है, वह "आसव" बनकर रह गया है। "लोकायतन" के पूर्व स्वर्णकिरण, स्वर्ण धूलि, युगपथ, उत्तरा, रजतशिखर, शिल्पी, सौवर्ण, अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद की लंबी सूची है। उनमें "कला और बूढ़ा चाँद" में थोड़ा नयापन अवश्य देखने को मिल जाता है अन्यथा अन्य सभी की भावभूमि लगभग एक-सी है। "स्वर्णकिरण" से लेकर "वाणी" तक पंत के काव्य में समीक्षकों ने "नवमानवतावाद," 'आध्यात्मवाद' आदि को खोजकर उसे एक उच्च वैचारिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की है। पर ध्यान रखना होगा कि काव्य का मुख्य सम्बन्ध सर्वप्रथम भाव और अनुभूति जगत से है, अन्य विषय बाद में आते हैं। छन्दबद्ध दर्शन ग्रंथ काव्य नहीं हो सकते। इधर कुछ लोग परिश्रम करके "कामायनी" को भी एक दर्शन ग्रंथ प्रमाणित कर देना चाहते हैं, उनके लिए भी यह चेतावनी पर्याप्त है कि वह काव्य के रूप में ही पर्याप्त वैभवशाली है, उसे दर्शन के भारी अलंकरणों की अपेक्षा नहीं। जब काव्य की अपनी गरिमा में कहीं कोई अभाव होता है तभी उसके लिए वाह्यारोपण की अपेक्षा होती है।

पंत के आध्यात्मिक काव्य में 'ऊर्ध्व मानव-चेतना' की चर्चा सर्वाधिक हुई है। कवि जैसे जीवन-यथार्थ से असन्तुष्ट होकर किसी ऐसे कल्पना-लोक का निर्माण चाहता है, जहाँ सब कुछ आदर्श रूप में होगा, पर ऐसा भावी स्वप्न व्यवहार की भूमि पर नहीं उतारा जा सकता। गांधीवाद स्वयं अपनी जन्म-भूमि में पराजित होता दिखाई दे रहा है—आदर्शवादिता के कारण। पंत जी की इस नवीन मानवतावादी दृष्टि की सूचना हमें 'ज्योत्स्ना' में ही मिल चुकी थी, पर 'स्वर्ण किरण' से 'वाणी' तथा 'कला और बूढ़ा चाँद' तक का समस्त सृजन तो इतना एकरस है कि सर्वत्र आध्यात्मिकता का रंग स्पष्ट दिखाई देता है।

वास्तव में पंत ने अपने व्यक्तित्व के चारों ओर मकड़ी का एक ऐसा जाला बुन लिया है कि बार-बार हम उन्हें उसकी परिक्रमा करते देख सकते हैं। लगता है जैसे यथार्थ जगत से उन्हें विरक्ति हो गई है, क्योंकि वह अपने वर्तमान स्वरूप में बड़ा भयावह है और इसीलिए उन्होंने एक 'स्वर्णिम जगत'

की कल्पना कर ली है। इस काव्य में वस्तुजगत की अपेक्षा भावलोक की चर्चा अधिक है और यहाँ पंत कवि के स्थान पर विचारक अधिक हो गए हैं। पर दर्शन, तर्क, विज्ञान की प्रणालियों से चलकर अपना एक स्पष्ट रूप निर्मित करता है, उसके स्थिर प्रतिमान होते हैं। किन्तु यहाँ 'समन्वय' पर आग्रह इतना अधिक है कि कवि का अपना जीवन दर्शन बहुत स्पष्ट स्वरूप नहीं ग्रहण कर पाता। हम अपने प्रतिभावान कवि की नेकनीयती की प्रशंसा करते हैं कि उसने मानवता के लिये अच्छी-अच्छी कल्पनाएँ की हैं, पर जहाँ तक काव्य, रसात्मक काव्य का संबंध है, हमारी विनम्र धारणा है कि वे काव्य के क्षेत्र से कुछ दूर चले गए हैं। इसमें से बहुत सा दर्शन गद्य में भी लिखा जा सकता है। पंत में आरंभ से ही कल्पना का जो वैभव विद्यमान था, उसकी ऐसी अन्तर्मुखी परिणति देखकर थोड़ा अफसोस होता है। यह उनकी संवेदनशीलता और कल्पना की ही सामर्थ्य थी कि वे सामाजिक यथार्थ को भी अनुभूतिप्रवण ढंग से प्रस्तुत कर सके हैं। उनकी चेतना ने उन पात्रों और दृश्यों से साक्षात्कार किया है। 'चिदंबरा' की भूमिका में पंतजी ने अपने नवमानवतावाद अथवा उन्हीं के शब्दों में 'नवीन चेतना काव्य' की विस्तृत व्याख्या की है, पर जैसा कि हम कह चुके हैं, यह दर्शन अधिक वायवी हो गया है।

'स्वर्णकिरण' से कवि में प्रवचन और भाषण की प्रवृत्ति बराबर विकसित होती गई है और 'वाणी' में तो जैसे वह वक्तव्यों को प्रचारित करना चाहता है। हाँ, 'उत्तरा' की कतिपय कविताओं में आज भी पंत जी के दृश्य-चित्रण की पूर्वपरिचित क्षमता के संकेत मिल जाते हैं जहाँ कवि प्रकृति के रूपों में रमता है। 'अतिमा' में संकलित 'कूर्माचल' कविता में अपनी जन्मभूमि और आरंभिक प्रेरणास्रोत प्राकृतिक सौन्दर्य के जो कुछ दृश्य अंकित हैं, वे मार्मिक हैं। पंत जी के नये काव्य को, मैं, मुख्य रूप से एक सांस्कृतिक दृष्टि का काव्य कह सकता हूँ, जिसमें भारत के अतीत गौरव, इतिहास और दर्शन का भी योग है। आश्चर्य तो यह देखकर होता है कि पंतजी अपने समय और समाज के अनेक प्रश्नों से परिचित हैं, और उनका संकेत भी कहीं-कहीं करते हैं, पर वे उनका चित्रण करने में नितांत संकोच करते हैं और उनके समाधान के लिये वे समाधिस्थ हो जाते हैं। पाठकों को अपने प्रिय कवि के नवीनतम काव्य से निश्चित ही वह परितोष नहीं मिला, जो उसे पूर्ववर्ती काव्य ने दिया था। पर ऐसा नहीं है

कि यह नया काव्य-चरण बिलकुल निषेध कर देने योग्य है। यहाँ आकर कवि में एक सांस्कृतिक दृष्टि विकसित हुई है। उसके भाव जगत का उन्नयतन हुआ है। कल्पना को अतिरिक्त विस्तार मिला है। शब्द-राशि और भी वैभवसम्पन्न हुई है। आज भी कहीं-कहीं मनोरम दृश्यावलियाँ देखने को मिल जाती हैं और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कवि नये शिल्पविधान से भी परिचित होना चाहता है। 'कला और बूढ़ा चाँद' कम से कम अपने शीर्षक में नयी प्रवृत्ति के समीप है। उसके शिल्प विधान और कहीं-कहीं भाव-बोध पर भी नये काव्य की हल्की-सी छाया दिखाई देती है। छंद का मोह यहाँ छूट गया है और कुछ नयी उपमाएँ भी देखने को मिल जाती हैं जिनमें पूर्ववर्ती एकरसता टूटती है। यह इस बात का प्रमाण है कि पंत जी साहित्य की नवीनतम चेतना से अपना सम्पर्क बनाए रखने की चेष्टा करते हैं। पंत जी के काव्य का एक ऐसा गुण है जो सर्वत्र उनमें जागृत रहा है और वह है उनका मौलिक आग्रह। वे अपनी ग्रहणशीलता में किसी वस्तु से प्रभावित हो सकते हैं, अभिभूत भी हो सकते हैं, पर उसमें से वे उतना अंश ही ग्रहण करेंगे जितना उन्हें रुचिकर होगा। इसीलिये वे समन्वय मार्ग के पक्षपाती हैं। शत-प्रतिशत अनुमोदन वे संभवतः नहीं कर पाते, क्योंकि उनकी चेतना अपनी कल्पना का आश्रय नहीं छोड़ सकती।

महाकाव्य-प्रणयन किसी भी यशस्वी कवि की आकांक्षा का स्वप्न हो सकता है, यद्यपि संसार के अनेक श्रेष्ठ कवियों ने महाकाव्यों का सृजन नहीं किया। पंतजी के 'लोकायतन' का आकार ही नहीं, उसका स्वरूप भी एक संकलनात्मक महाकाव्य के निकट दिखाई देता है। उसमें अपने युग का एक धारावाहिक चित्र तो है, पर वह इतना विवरणमय हो गया है कि उसमें रसात्मकता नहीं आ पाई है। हम दूर-दूर तक चले जाते हैं, पर काव्य का एक जो केन्द्रीय तत्व होता है, वह हमें नहीं मिल पाता। गाँधी और अरविंद के व्यक्तित्व इसमें प्रमुखता प्राप्त करते हैं जो किसी काव्य के लिए अतिरिक्त वैचारिक आरोपण ही कहे जायेंगे। मिल्टन के 'पेराडाइज लास्ट' पर भी यही दोष लगाया जाता है। आज का युग महाकाव्यों, विशेषतया दीर्घ आकार के महाकाव्यों के लिए बहुत उपयुक्त नहीं माना जाता। यदि हम युग बोध के सहारे जीवन का चित्रण करना चाहते हैं तो हमें जीवन की जटिलताओं के भीतर प्रवेश करना होगा और प्रतीकात्मक, सांकेतिक रीति से ही उनकी

व्यंजना हो सकेगी। पर 'लोकायतन' पाठक के धैर्य को पराजित करने की सामर्थ्य रखता है। स्वाभाविक है कि ऐसे दीर्घआकारी काव्य में अनेक कथाओं के आकर्षण से पाठक बँध सकता है, पर जहाँ वह भी न हो, वहाँ तो वह ऊबने लगता है। यह काव्य बहुत बिखर गया है और अपनी संकेतात्मक प्रणाली के कारण इतिहास ग्रंथ-सा दिखाई देता है। यहाँ भी कवि ने समस्त समस्याओं का समाधान अपनी आध्यात्मिक रीति से ही प्राप्त किया है। महाकाव्य प्रायः वस्तुन्मुखी सृजन होता है और जल्दी से देख जाने पर 'लोकायतन' के दार्शनिक प्रवचनों को छोड़कर प्रायः हमें कवि की वैयक्तिकता नहीं दिखाई देती।

हम पंत के नवीनतम सृजन अथवा उनके समस्त काव्य का परीक्षण नवीनतम समीक्षा-निकषों और काव्य की नव्यतम दिशाओं के आधार पर नहीं करना चाहते, किन्तु प्रश्न यह है कि स्वयं उनके समस्त सृजन के क्रम में उनके नवीन काव्य की स्थिति क्या है इस दिशा में हमारी दृष्टि छायावाद युग की वृहत्रयी पर जाती है। प्रसाद की आरंभिक रचनाएँ शिथिल हैं, पर उन्नयन करते हुए वे महत्तर ऊंचाइयों पर गए हैं। निराला में निसर्गजात प्रतिभा है और आदि से अंत तक वे काव्य के एक विशिष्ट धरातल का निर्वाह करते हैं, पर पंत का काव्य एक दृष्टि से निगति की ओर जाता दिखाई देता है, क्योंकि वे कवि के बदले विचारक हो गए हैं। पंत की काव्यदिशाएं इतने मोड़ लेते गई हैं और उनमें ऐसे तीक्ष्ण परिवर्तन हुए हैं कि नयी धारा कहीं-कहीं पूर्ववर्ती धारा से कटी हुई नजर आती है। व्यक्तित्व की एक खण्डित यात्रा-सी दिखाई देती है, जिसमें रचनाकार ने बार-बार दिशापरिवर्तन किया है। लगता है जैसे अपने को विकास देने के प्रयत्न में कवि का व्यक्तित्व बिखर गया है, उसका समीकरण नहीं हो पाया है। उनके नये काव्य को केवल व्यक्तित्व-विकास नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह तो स्पष्ट दिशा परिवर्तन है। किन्तु इस खण्डित यात्रा के मध्य कतिपय ऐसे सूत्र कवि पंत के काव्य में सूक्ष्म रीति से संग्रथित दिखाई देते हैं, जिनके विषय में यह कहा जा सकता है कि वे उनके समस्त सृजन में एक भाव से विद्यमान रहे हैं। कल्पनातत्व की चर्चा की जा चुकी है और मेरा तो विश्वास है कि यदि पंत जी में कल्पना का यह आधिक्य न होता तो संभवतः उनकी यह दर्शनवादी, अन्तर्मुखी परिणति न हुई होती। आज भी उनकी कल्पना की यह क्षमता स्वप्नजगत के निर्माण में दृष्टव्य है। पंत आरम्भ से ही अन्तर्मुखी रहे हैं और दार्शनीकरण उनकी एक प्रवृत्ति है।

प्रकृति से इसी कारण वे निष्कर्ष प्राप्त करते रहे हैं, पर आज यह आध्यात्मीकरण, दार्शनीकरण कुछ अतिवादी भूमि पर जा पहुँचा है। आरंभ की रोमांटिक भावना आज भी जैसे इस रूप में सक्रिय है कि एक नए आदर्श लोक का निर्माण हो। पंत के नए काव्य को मैं अन्तरावलोकन का काव्य मानता हूँ, जिसमें कवि 'मनोमय कोष' को वाणी देने में यत्नशील है।

यह निर्विवाद है कि पंतजी एक प्रतिभावान कवि हैं और इसलिए सभवतः उनके 'पल्लव'-कालीन पाठक उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ रखते थे। चित्रांकन की जो क्षमता, शब्द-ध्वनि का जो ज्ञान पंत जी को रहा है, वह शिल्प की दिशा में उन्हें शिथिल नहीं होने देता, पर हम उन्हें विचारक और सांस्कृतिक उपदेशक के रूप में नहीं, एक कवि के रूप में ही देखना चाहते थे। आज भी पंत जी जहाँ प्रकृति के दृश्यों का अंकन करने लगते हैं, उनका प्राचीन वैभव समक्ष आ उपस्थित होता है, और हमें चित्र पर चित्र देखने को मिल जाते हैं। समय के साथ सृजन की दिशाएँ बदलती हैं, एक ही सृष्टा के कई चेहरे हमें देखने को मिलते हैं। किन्तु सृजन के दौर में उसे विकासात्मक रूप ही मिलना चाहिए। यदि इस यात्रा में रचनाकार किसी भी कारण से लड़खड़ाकर टूट जाता है तो यह उसके व्यक्तित्व की पराजय है। कवि पंत ने हिन्दी कविता में संभावनाओं के जो द्वार खोले थे, उन्हें अधूरा छोड़कर दर्शन की दीवारें उठाने लगना कवि-धर्म के भी बहुत अनुकूल नहीं है। लोग कह सकते हैं कि पंत जी कथ्य के अभाव में, संभव है, इस बौद्धिक और वैचारिक क्षेत्र की ओर चले आए हों, पर मैं इसे स्वीकार करने को तत्पर नहीं हूँ। जो कवि प्रकृति के छोटे से छोटे दृश्य को भी पूर्ण विस्तार और पूरे संभार के साथ अंकित करने की सामर्थ्य रखता हो, जिसके पास संवेदनशक्ति हो, जो उदार मानवीयता से सम्पन्न हो, उसे कथ्य की कमी तभी पड़ सकती है, जब वह जीवन जगत से आँखें मूँदकर समाधिस्थ हो जाय। हम समझते हैं कि कालान्तर में कवि पंत का आरम्भिक काव्य अपनी भावसम्पत्ति, रूपचित्रण, मनोरम कल्पना के गुणों के लिए याद किया जायगा और परवर्ती काव्य में अनुसंधायक उनकी विचारणा के सूत्र खोजते रहेंगे। हमें इतना अवश्य कहना है कि समस्त विकासक्रम में पंत जी सदैव निष्ठावान रहे हैं और यह पवित्रता उनमें सर्वत्र देखी जा सकती है।

स्व० 'नवीन' जी का काव्य-कृतित्व

—डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे

वालकृष्ण शर्मा नवीन' का काव्य-कृतित्व अनेक दृष्टियों से देखा-परखा गया है। उसमें विभिन्न स्थितियां, अनेक प्रारूप और विशिष्टताएँ हैं। उसका चित्रपट पर्याप्त विशाल और विविध रंगों से मंडित है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने कविताओं के अतिरिक्त, कहानियां, गद्य-काव्य, निबंध, आलोचना, संस्मरण और सम्पादकीय-टिप्पणियां भी लिखीं। उन्होंने सन् १९१५ से लिखना प्रारंभ किया और लगभग ४०-४५ वर्षों तक काव्य-साधना की। उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित कविता 'जीव ईश्वर वार्तालाप' विषय पर, सन्-१९१८ में, श्री ज्वालादत्त शर्मा द्वारा सम्पादित मासिकी' 'प्रतिभा' के मुखपृष्ठ पर छपी थी। इसके पूर्व की एक कविता भी मुझे प्राप्त हुई है जो कवि ने अपने शालेय जीवनावधि में, उज्जैन की सन् १९१५ की 'विद्यार्थी शीर्षक हस्तलिखित पत्रिका में लिखी थी। 'सूर्य के प्रति' अपनी इस अप्रकाशित एवं "हम विष पायी जनम के" में असंगृहीत कविता में उन्होंने लिखा था :—

"हे तारकराज ! तुम्हें प्रणाम हमारा,
करते हो तुम दूर रात का अँधियारा।
भर देते हो सुप्रकाश से जग सारा,
है कितना विश्व पर उपकार तुम्हारा।
तुम देते हो आदेश शीघ्र उठने का,
कर्तव्य भाव से आलस्य दूर करने का।
ज्ञान की प्रभा से अज्ञान-तम हरने का,
सत्कार्य-तेज से जीवन को भरने का॥"

ऐतिहासिक क्रम से 'नवीन' जी की यह सर्वप्रथम कविता घोषित की जा सकती है।

'नवीन' की अंतिम कविता 'जीवन-वृति' है जो उन्होंने सन् १९५६ में लिखी और खेद है कि यह भी उनके 'हम विषपायी जनम के' में संकलित नहीं है। इस विस्तृत समयावधि में 'नवीन' जी ने छः काव्य-संग्रह और दो प्रबंध-

काव्य लिखे। किसी ने उनकी कुल कविताएँ एक सहस्त्र बताईं तो किसी ने साढ़े-चार हजार। मैंने समग्र प्राप्त कविताओं की जो काल-क्रमानुसार तालिका बनाई तो वे लगभग पाँच सौ निकलीं।

'नवीन' की कृतियों के संगृहीत प्रकाशन की भी अपनी करुण गाथा है। सन् १९१५ से कविताएं लिखने वाला और सन् १९२० से साहित्य में समादृत कवि का प्रथम काव्य-संकलन 'कुंकुम' सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् पुनः एक युग तक उनका कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। उनका द्वितीय संग्रह "रश्मि रेखा" सन् १९५१ में निकला। 'नवीन' ने अपनी प्रबन्ध-कृति 'ऊर्मिला' का लेखन लखनऊ कारागृह में सन् १९२२ में किया और उसका अंत सन् १९३४ में किया। इसका भी निर्माण एक युग में हुआ। 'साकेत' की रचनावधि सन् १९१४-१९३१ की है। जहाँ 'साकेत' सन् १९३२ में प्रकाशित हुई। इसी कारण 'साकेत' को जो ऐतिहासिक गरिमा प्राप्त हुई, उससे 'उर्मिला' वंचित रह गई। प्रत्येक कृति का समय से प्रकाशित हो जाना उसकी महत्व-रक्षा के लिये अत्यावश्यक होता है।

इसी प्रकार द्वितीय प्रबंध-कृति 'प्राणार्पण' के चरित्रनायक गणेशशंकर विद्यार्थी का सन् १९३१ में बलिदान हुआ। इस काव्य के प्रारम्भिक परिचय में इसका रचना-काल सन् १९३२-३३ बताया गया है जो कि मेरी दृष्टि से उचित नहीं है। इन वर्षों में तो कवि 'उर्मिला' के प्रणयन में संलग्न था। वास्तव में, विद्यार्थी जी की आत्माहुति के दस वर्ष पश्चात् सन् १९४१ में, इसका सृजन हुआ है। मूल पाण्डु-लिपि के अन्तिम अर्थात् पंचम सर्ग, जिसका शीर्षक 'पंचाहुति' या 'गीतमाला' था, में उक्त समय-स्थान का स्पष्ट निर्देश है और इन मृत्यु-गीतों को 'मृत्यु धाम' के उप-शीर्षक से 'हम विषपायी जनम के' में संकलित कर लिया गया है। सियारामशरण गुप्त के प्रबंध-काव्य 'आत्मोत्सर्ग' का इससे विषय-साम्य है। 'आत्मोत्सर्ग' जहाँ सन् १९३१-३२ में लिखा गया और जब उसकी चतुर्थावृत्ति हो चुकी, तब 'प्राणार्पण' अपने सृजन के २१ वर्ष बाद कवि के मरणोपरांत सन् १९६२ में प्रकाशित हुआ। उनका अंतिम काव्य संग्रह 'हम विषपायी जनम के'—जिसमें छह स्फुट कृतियाँ समाहित हैं—का प्रकाशन भी कवि के निधनोपरान्त सन् १९६५ में हुआ। इसे उनके समग्र-काव्य-साहित्य का संग्रह माना गया है परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। कम से कम अभी भी इतनी रचनाएँ अवशिष्ट रह गई हैं जिनका एक छोटा-मोटा संग्रह बनाया जा सकता है। 'नवीन' के व्यवस्थित तथा समयानुकूल शीघ्र

प्रकाशन के न होने का कारण उनका राजनैतिक जीवन, अत्यधिक व्यस्तता तथा निजी प्रमाद रहा है। इसका आँशिक उत्तरदायित्व तो उन पर भी है। इसी कारण वे न तो विधिवत् समीक्षा के पात्र बन सके और साहित्यि परम्पराओं और मान्यताओं से दूर जा पड़े। वे आजकल के कतिपय कवियों की प्रकाशन-कला, आत्म-प्रचार और विज्ञापनबाजी में भी माहिर नहीं थे। 'नवीन' का जीवन-सत्व तो इन पंक्तियों में मूर्तिवत हो उठा :—

"मैं हूँ भारत के भविष्य का, मूर्तिमान विश्वास महान।
मैं हूँ अटल हिमाँचल सम थिर, मैं हूँ मूर्तिमान बलिदान ॥"

प्रकाशन असंतुलन, बहुधंधीपन, फक्कड़ता तथा सर्वस्व प्रदान कर प्रतिदान प्राप्त करने की वृत्ति से वंचित रहने के कारण वे न तो अपने को विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रमों में बिठा सके, न उनकी किसी कृति का द्वितीय संस्करण हुआ और न वे साहित्य के शास्त्रीय परिवेश में गृहीत हुए ; यदि वे एकोन्मुख साहित्यिक साधक ही होते तो उन्हें भी किसी 'त्रयी' में स्थान मिल जाता। 'एक भारतीय आत्मा' ने ठीक लिखा है कि हमें यह भी याद आता है कि, प्रणय के सौ-सौ आरोपों के बावजूद भी, 'नवीन' अपनी प्रत्येक कोमल कल्पना और मनोहर भाव-माधुरी में रो उठता है, इसीलिये नहीं कि उसने उस परम माधुर्य का सृजन जेल के कठोर जीवन में किया है, किन्तु इसलिये कि जेल की तस्वीर से काव्य के माधुर्य तक सीधी खड़ी रेखा खींच सकने वाली पाठक की आँखें इस समय तक भी, उस मनस्वी को मिली ही नहीं ! आलोचक भी, आँखों और आवेगों के आकर्षण, अथवा अपनी गुरुता के बोझ में ऐसा भूला, कि सूली पर भूला, और कष्टों की तस्वीरें गीतों पर मत बनाते समय उसे दीखी ही नहीं !

'नवीन' ने अपने युग को 'संक्राति काल,' त्रिशंकु काल.' सन्धिकाल' और 'द्वापर' की संज्ञा प्रदान की है। 'वे कहते हैं :—

"हम संक्राति काल के पापी बदा नहीं सुख भोग,
हमें क्या पता क्या होता है स्निग्ध सुखद संयोग ?
हम बिछोह के पले, खूब जाने हैं पूर्ण वियोग,
घर उजाड़कर जेल बसाने का है हमको रोग।"

संक्रान्ति-काल में प्राचीन और नवीम का समन्वय होता है। संशय और

द्वन्द्व का सूत्र नहीं (देखिये 'माध्यम' जनवरी, १९६५) अपितु 'समन्वय' का सूत्र 'नवीन' के काव्य-व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण प्रवेश-द्वार है। उनमें समन्वय है परन्तु अपने ढंग का। 'नवीन' ने जिस समय अपने कवि-जीवन तथा राष्ट्रार्पित व्यक्तित्व की पंखुड़ियों को खोला, उस समय, साहित्य तथा राजनीति, दोनों के ही वरेयण्य-क्षेत्रों में, 'नव' का 'रव छा रहा था और 'गत' का 'मत' इतिहास के पृष्ठों में विलीन होने के लिये उत्सुक था। राजनीति में तिलक-युग की परि-स्माप्ति और गांधी-युग की सुगंधि सर्वत्र छा रही थी। साहित्य में द्विवेदी युग के 'स्थूल' का स्थान छायावाद का 'सूक्ष्म' ग्रहण करने के लिए कटिबद्ध होने लगा। परिणाम स्वरूप, 'नवीन' के काव्य में जहाँ एक ओर स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियाँ अपना घर बनाने लगीं, वहाँ दूसरी ओर गाँधीवादी युग-चेतना से भी वह अभिसंचित होने लगा।

'नवीन' स्वयं संक्राति-काल की प्रतिमूर्ति थे। उनकी 'उर्मिला" के राम त्रेता-युग को भी संक्राति काल घोषित करते हैं और लक्ष्मण एवं विभीषण उसका महत्वाँकन करते हैं। 'नवीन" में तिलक-युग तथा गाँधी युग दोनों का ही समन्वय प्राप्त होता है। उन्हें तिलक-युग की ओजस्विता, उष्णता एवं अनल-लहरी प्रत्यक्ष भी प्राप्त हुई और परोक्ष भी। गाँधी युग ने कवि को यौवन-और उन्मेष प्रदान किया। वह गर्जना के स्वर को आध्यात्मिक मूल्यों में बाँधने लगा। अपने आपको "गाँधी का गधा" अथवा बापू के बलिदान के बाद स्वयं को "विधवा" रूप में सम्बोधित करने वाला कवि, मेरी दृष्टि में, गाँधी की अपेक्षा तिलक की ओर अपने हिय-स्पन्दन-प्रवाह को प्रवहमान देखता था।

'समन्वय" की समर्थ-कुंजी को और प्रसार देने पर, कतिपय विशिष्ट मूल्य प्राप्त होते हैं। जहाँ एक ओर कवि ने महात्मा गाँधी, गणेशशंकर विद्यार्थी तथा विनोबा भावे सदृश्य समकालीनों पर अपनी पुष्पाँजलियाँ समर्पित कीं, वहाँ वह उर्मिला के परित्यक्त एवं उपेक्षित आख्यान की, काव्यात्मक अभि-व्यक्ति में भी निष्ठापूर्वक रमा। जहाँ उसने मुक्तक, प्रगीत और मुक्त छंद की अधनातुन काव्य पद्धतियों को अपनाकर, समय के डग के साथ अपने पग मिलाये, वहाँ पद, दृष्टकूट, दोहा, चौपाई, सोरठा, कुण्डलियाँ लिखकर अपने प्राचीनता के मोह को भी प्रदर्शित किया। एक और वह पदार्थवादी दर्शन, भौतिक-शास्त्र एवं अणु-विज्ञान की काव्यात्मक टिप्पणियाँ करता है, वहाँ दूसरी ओर अपने जीवन-दर्शन को उपनिषद् एवं वेदांत के चिर प्रेरणास्पद् नीर से पोषित करता है। वह गीता के गीत गाता है तो भूमिदान-यज्ञ की भी साँस्कृतिक छवि

दिखलाता है। इस प्रकार "नवीन" में युग-धर्म बोल उठा है। वे प्रणय तथा चिन्तन, दोनों के आवरणों को खोलते हैं। वे बलिवेदी के गायक भी हैं और मधुवादी प्रवृतियों के पोषक भी। मधुपान तथा गरलपान दोनों को एक समान समत्व प्रदान करते हैं। उन्होंने प्रेम के आगे 'मत्था' टेका और बंदूक के सामने छाती खोल दी। वे प्रेय से श्रेय की ओर बढ़े। ससीम में असीम को ढूँढ़ा। पार्थिव को अपार्थिव दीप्ति प्रदान की। वियोग में योग के दर्शन किये। आकर्षण तथा समर्पण की गाँठ बाँधी। उनको यदि रखा जा सकता है किसी के साथ तो वे हैं कबीर, निराला, माखनलाल, माइकेल मधुसूदन दत्त, शैली और बायरन।

उनको तनाव, संशय और द्वन्द्व का कवि मानना उतना ही 'अंश सत्य' है अथवा 'मात्र खण्ड सत्य' है जितना उनको राष्ट्रीय कवि उद्घोषित करना। 'नवीन' उन कवियों में हैं जिनका जीवन और काव्य समीपी वस्तु रहा है। एक की अन्तरंग परिचय विहीनता दूसरे में भ्रांति खड़ी कर देती है। एक संग्रह अथवा कतिपय मनोनुकूल एवं लक्ष्य-सिद्धि-सहायक रचनाओं का अध्ययन अथवा उद्धरण भ्रामक 'फतवों' या दृष्टि को जन्म देता है। वास्तव में रोमाँस, करुणा एवं विद्रोह को उनके काव्य का केन्द्र माना जा सकता है। मेरे विचार से वे मूलतः 'रोमेन्टिक कवि' हैं। उनका रोमाँस ही कभी करुणा प्लावित हो जाता है और कभी विद्रोह की मेघ-गर्जना करने लगता है।

हिन्दी के समीक्षकों ने 'नवीन' के राष्ट्रीय कवि के रूप को बहुत उछाला, उसके समसामयिक कारण भी थे। उनका, राजनैतिक जीवन, राष्ट्रीय-सेवाएँ, उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ, कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, आज खड्ग की धार कुंठिता औ खाली तूणीर हुआ, "महानाश की भट्टी," जूठे पत्ते आदि की ध्यानाकृष्टता और तत्कालीन परिवेश पर औचित्य ने ऐसा दृष्टिकोण बनाया परंतु उनके जीवन-काल में प्रकाशित संग्रहों में राष्ट्रीय कविताएँ स्वल्प-मात्रा में ही मिलती हैं। यद्यपि रचनाओं की न्यूनता अथवा आधिक्य से किसी कवि की मूल-वर्तिनी भाव-धारा का निर्णय नहीं होता। परंतु अब, जबकि उनका समूचा काव्य-प्रासाद हमारे समक्ष संस्थित है, उसका गहन मनन उन्हें स्वच्छंदता मूलक वृत्तियों के घृत से आपूर्ण पाता है। 'नवीन' की राष्ट्रीय-साँस्कृतिक रचनाओं ने हिन्दी में नूतन भाव-भूमिकाओं को जन्म दिया। वे जीवित अनुभूतियों के कवि थे। उनके राष्ट्रीय काव्य में जीवन के स्पन्दन आये हैं। उनकी राष्ट्रीयता

भावुकतामयी है और उसमें वस्तुपरक बिम्ब न आकर, प्रवृतिपरक प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होते हैं। यह काव्य आशावादिता, उत्कंठता, क्रांति तथा विप्लव के सुदृढ़ पृष्ठों से युक्त हैं। कवि ने राजनीति की धारा की अपेक्षा साँस्कृतिक राष्ट्रवाद को अधिक आश्रय प्रदान किया है। कवि की इस दिशा की सर्वाधिक महान् उपलब्धि 'प्राणार्पण' हैं। इसमें युग-चेतना का जितना सम्यक्, विस्तृत एवं प्रभावपूर्ण आकलन हुआ उतना अन्य किसी कृति में नहीं। वर्तमान हिन्दी काव्य में जो आधुनिक प्रबंध-काव्य लिखे जा रहे हैं, इस परिपाटी के मूल में हम 'नवीन' जी के 'प्राणार्पण' को रख सकते हैं। कतिपय समीक्षकों ने आधुनिक हिन्दी काव्य में 'नाशवाद' 'विप्लववाद' एवं 'प्रगतिवाद' के प्रवर्तन का श्रेय 'नवीन' जी को ही दिया है। वे प्रवृति से प्रगतिशील थे सिद्धाँत से नहीं।

नवीन' का प्रेम-काव्य उनके जीवन की सच्ची उपज है। उनका अपूर्ण प्रेम-स्वप्न यहाँ लहरा उठा है। इस क्षेत्र में उनका स्रोत 'प्रसाद' से सादृश्य रखता है :—

"मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया,
आलिंगन में आते-आते मुसक्या कर जो भाग गया।"

कवि के जीवन में अनेक प्रकार की स्थितियाँ, मनोदशाएँ एवं प्रसंग आते हैं परंतु उनको ही सर्वोपरि मान लेना सर्वांगीणता नहीं है। 'हृदय की दाह' तो उनके जीवन की उद्भावना है और 'तनमन से तुमको प्यार किया' कहकर, न तो मिलन का अवसर ही आ पाता है और न हृदय की दाह ही छूट पाती है। उनके काव्य में संयोग की अपेक्षा वियोग के चित्रों का ही प्राचुर्य है। उनकी प्रणय-कविताओं में 'संशय' नहीं अपितु 'अन्तर्द्वन्द्व' मिलता है। 'तनाव' के स्थान पर 'संघर्ष' शब्द उपयुक्त प्रतीत होता है। वे भावना से कर्तव्य की ओर बढ़ते हैं। संशय एवं तनाव उनकी आनुषंगिक मनः स्थिति है। अपनी प्रेयसी को अपने मनुहार, प्यार, नेह-रार, स्वर-सिंगार और स्वप्निल विचार को केन्द्र-बिन्दु निरूपित करने वाले 'नवीन' उसी कविता में, अपने अन्तर्द्वन्द्व और वस्तुस्थिति का भी ठीक परिचय देते हैं :—

"जीवन की संगिनियाँ रंग-रेलियाँ हैं, किन्तु,
आज ऐतिहासिकता आयी है तुम्हारे द्वार,
विप्लवी क्षणों में, बंधु, कैसी यह हिय-हार ?
कैसी मनुहार ? कैसी स्नेह-रार, क्या दुलार ?

उनमें संशय एवं आस्था, संघर्ष एवं शांति, शृंगार और संयम, स्वच्छंदता तथा नैतिकता और विजया एवं लज्जा का विचित्र सामंजस्य मिलता है। उनका 'असिधारा पथ' इसी कठोर कर्मठता तथा नूतन उद्भावनाओं से बना है न कि संशय और द्विधा की तलवार का वार है। सन् १९४५ के बाद भी उनकी 'सजनी' उनसे दूर नहीं हुई थी अपितु उनकी अंतिम कविता 'जीवन-वृत्ति' में, काव्य और जीवन के पटाक्षेप के समय भी उपस्थित रहती है। 'नवीन' का द्रष्टा रूप 'ऊर्मिला' में, नेता रूप ओजस्वी रचनाओं और सौन्दर्य-लोक का अनुगामी रूप शृंगारिक रचनाओं में स्पष्ट है।

'नवीन' को टकसाली छायावादी रचनाओं के लिखने का न तो अवकाश था और न वृत्ति। कविता उनका गंतव्य थी परन्तु राजनीति ने उसे आच्छादित कर दिया था। उनके जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य और अभिशाप यह रहा कि साहित्यिकों ने उन्हें राजनीतिक माना और राजपुरुषों ने उनमें साहित्यकार का प्राधान्य पाया। इन्हीं दो पाटो में उनका जीवन और वाङ्मय पिस गया। उनकी मस्ती, फक्कड़ता, तन्मयता आदि उनके स्वत: की ही उष्णता थीं; कृत्रिमता, चेष्टा, बचाव अथवा संशय-ग्रस्त प्राणों की सृष्टियाँ नहीं है। यह मस्ती कौशिक-मण्डली से उर्ध्वमुखी अवश्य हुई, परन्तु उपजी नहीं, यह तो मालवे की मिट्टी, बाल्यावस्था के संस्कार, माता की करुणाप्लाविता, पिता की भक्ति, प्रारम्भिक दरिद्रता, जीवन के दुख:, अभाव, धार्मिक रेखाएँ आदि से घुलमिल कर बनी थी।

'नवीन' का दार्शनिक काव्य भी संशय की उत्पत्ति नहीं है। यह उनके वैष्णवी संस्कार, अतिशय भावुकता, उपनिषदों एवं गीता के उत्स से प्रभावित है। उनके मृत्यु-गीत नचिकेता-संवाद की जीवन्त अनुभूति है। उनका हलाहल-धारी और विषपायी रूप एक ओर पौराणिक संस्कृति का स्फुरण है; दूसरी ओर राष्ट्रीय-आंदोलन के जूझने वाले योद्धा की सार्थक भावनाओं एवं निज जीवन व्यापी विषमताओं एवं कठिनाइयों का प्रतिफल। 'मरण गीत' हिन्दी वाङ्मय की वंदनीय रत्न-मंजूषा है। यह कवि का सर्वथा नूतन, मौलिक एवं प्रौढ़ प्रदेय है। आधुनिक काल में किसी भी कवि ने उनके जैसे आस्थामय एवं गम्भीर प्रतिपादनायुक्त गीत नहीं लिखे। उनकी अंतिम रचनाओं में संशय के स्थान पर निराशा या हताश भावना अवश्य मिलती है परन्तु उसे पराजय का भाव नहीं समझा जा सकता। उनकी प्रसिद्ध रचना 'यों शूल युक्त, यों अहि-आलिंगित है जीवन' का अंत नितांत आस्था तथा आशा से परिपूर्ण है :—

"मैं अमृत-पुत्र, मैं सुधा-सुवन, मैं सुमन जात,
यह गरल और ये शूल छद्म छल-छाया है,
मैं सदानंदमय, मैं चिन्मय, मैं ईश-वृत्ति
वेदना वृन्द तो भ्रम है, केवल माया है।"

यदि वे इसी आशा पर आजीवन विषपान करते रहे तो आस्था का स्वर ही उनका काव्य-केन्द्र हुआ न कि संशय का स्वर।

'उर्मिला' जहाँ 'नवीन' काव्य की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति और कवि की यश: पताका एवं चिरंतन काव्य-वैभव की अक्षयवाटिका है, वहाँ यह हिन्दी काव्य की महती तथा सारगर्भित उपलब्धि है। 'नवीन' का एक मात्र यह प्रदेश ही उनको हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में शोभायमान करने के लिए पर्याप्त है। यह राम-काव्य-परम्परा का युगांतरकारी महाकाव्य है और इसमें मौलिक प्रसंगोद्भावनाओं तथा अभिनव साँस्कृतिक दृष्टिकोण की परिपक्वता है। 'नवीन' ने शास्त्रीय राग-रागिनियों से बद्ध गीतों के द्वारा विद्यापति, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, नंददास आदि की परिपाटी की आभा बढ़ाई है। आधुनिक कवियों में 'निराला' ही उनके संगीत-ज्ञान के समकक्ष आ सकते हैं। 'निराला' की काव्य-प्रौढ़ि का 'नवीन' में अभाव है। 'नवीन' खड़ी बोली और ब्रजभाषा के सेतुबंध हैं। उन्होंने स्थानीय, देशज आदि शब्दों को प्रयोग कर, हिन्दी के शब्दकोश की अभिवृद्धि की है। भावुकता उनके कवि-व्यक्तित्व का सर्व प्रमुख तथा संचालन कारी सूत्र है। इसी कारण उनका शिल्प पक्ष भी कमजोर पड़ गया है। इसी भावुकता के कारण भाषा अनगढ़ हो जाती, छंद उच्छृंखल बन जाते और कलात्मक परिष्कृति मन मसोस कर रह जाती है।

'नवीन' न केवल हमारे प्रिय कवि ही हैं अपितु महत्वशाली कवि भी हैं। 'त्रिविध घात-प्रतिघात को अपनी प्रखर प्रतिभा से संघटित कर नये अर्थ में आयामित' होने वाला उनका काव्य एवं उदात्त रूप 'ऊर्मिला' एवं 'प्राणार्पण' में बिखरा पड़ा है। वे किसी मत या वाद से बंधे न होकर जीवन से आबद्ध थे। हम कह सकते हैं कि रति तथा यति, मसि एवं असि को पचाकर समरसता का दिग्दर्शन करने वाला ऐसा व्यक्तित्व हिन्दी में शताब्दियों के बाद उत्पन्न हुआ। युग के बड़वानल को जितने पौरुष तथा मस्ती के साथ 'नवीन' ने पिया, वह एक निराली ही कहानी है जिसे इतिहास भूलने का साहस नहीं कर सकता। उन्होंने सब कुछ समर्पण कर दिया—अपनी मस्ती के लिये, राष्ट्रमाता के लिये,

हिन्दी-भारती के लिये और वाणी की आराधना के लिये। उन्होंने सिर दिया परन्तु सार नहीं दिया। इस गरल-संगीत के प्रणेता, हलाहल-धर्म के प्रवर्तक और हिन्दी के नीलकण्ठ ने, युग के विष का पान करके, उसे प्राकृत बनाकर, काव्य-कुम्भ में उड़ेल दिया। राष्ट्रवाद के वैतालिक, प्रेम-भक्ति काव्य के रसखान, दार्शनिक काव्य के नचिकेता एवं फक्कड़ता के इस महाकवि 'नवीन' की काव्य-वाणी, इतिहास के मान सरोवर को सदा सर्वदा तरंगायित करती रहेगी और युग-युगांतरों का शृंगार। अपराजेय योद्धा, 'राष्ट्रभाषा' के 'दधीचि' एवं युग-निर्माता 'नवीन' का यह वंदनीय रूप, हमारे वाङ्मय की शाश्वत धरोहर है—

"मैं देवदूत, मैं अग्निदूत हूँ मनःपूत चिर बलिदानी,
नव जीवन का उन्नायक मैं अंगारों की मेरी वाणी,
मम नासा-रंध्रों से निकली मेरे निःश्वासों की ज्वाला,
मेरी वाणी में वज्र घोष, मेरे नयनों में उजियाला।"

●

हे राम ! तुम्हें यह देश न भूले,
निज भाषा, निज देश न भूले।

राष्ट्रकवि स्व० मैथिलीशरण गुप्त

—"हिन्दी भाषा का सौन्दर्य विलक्षण है। मै अंग्रेजी बोलता हूँ तो लगता है कि जैसे मुँह में बालू भरकर बोल रहा हूँ।"

सुमित्रानन्दन पंत

—मुट्ठी भर सत्तालोलुप व्यक्ति अपनी और अपनी पीढ़ियों की सुख समृद्धि को परम्परागत बनाये रखने हेतु एकांगी दृष्टिकोण के कारण, हिन्दी को अपरिपक्व भाषा कहकर विदेशी भाषा को पोषण देने में संलग्न हैं। यही वर्ग अपने आपको बुद्धिजीवी (*Intelligentia*) घोषित करता है। आसाम के एक माननीय मंत्री ने मात्र इसी वर्ग को बुद्धिजीवी होने का श्रेय भी दे दिया। विगत सत्रह वर्षों की लम्बी अवधि में यह तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग हिन्दी जैसी सुगम और सरल भाषा को अपनाने में नितान्त असमर्थ रहा। इसलिये हमारी दृष्टि में इन बुद्धिजीवियों की बुद्धिमत्ता हास्यास्पद प्रतीत होती है।

●

भाषा सम्मेलन

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जबलपुर में संपन्न तृतीय अधिवेशन के अवसर पर २१ जनवरी ६५ को रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर के उपकुलपति डॉ० बाबूराम सक्सेना की अध्यक्षता में भाषा सम्मेलन का आयोजन किया गया था।

सम्मेलन में प्राचार्य गो० मो० रानडे, डॉ० त्रिविक्रमपति, डॉ. प्रेमचंद श्रीवास्तव, डॉ० महावीर शरण जैन, प्रो० गुरुनानी और श्री सुन्दरम ने क्रमशः मराठी, उड़िया, उर्दू, हिन्दी, सिंधी और तमिल भाषा के साहित्य के विकास के संबंध में निबंध वाचन किया।

अंत में भाषा सम्मेलन के अध्यक्ष डॉ० बाबूराम सक्सेना ने अपने उद्‌गार प्रगट किये।

डॉ० सक्सेना ने कहा :—

कौन भाषा सबसे पुरानी है यह कहना संभव नहीं। पुरानी भाषा में सबसे पुराने अवशेष मोहन जोदडो की लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सकता।

यों तो हर एक को अपनी भाषा अच्छी लगती है लेकिन हमें अन्य भाषाओं का भी अस्तित्व स्वीकारना है। भ्रमजाल फैलाने से भाषाओं का संघर्ष बढ़ता है।

मैं समझता हूँ संस्कृत से बढ़कर पुरानी भाषा कोई नहीं है। ऋगवेद १५०० वर्ष ईसा पूर्व का ग्रंथ है। इसके पूर्व किसी ग्रंथ का उल्लेख आर्य भाषा में नहीं है। इसके बाद भी भ्रम फैलाया जाता है। इतिहास और पुराण में हमें भेद करना है। इतिहास तर्कों पर और पुराण श्रद्धा पर आधारित हैं।

देश में बहुत भाषा विवाद है। अबोध जनता को बरगलाया जाता है। हिन्दी भारतीय भाषाओं का हनन चाहती है, यह बात लोग द्वेष से

भाषा–सम्मेलन

भाषा सम्मेलन के अध्यक्ष डा. बाबूराम सक्सेना अपने विचार व्यक्त करते हुए।

मंचासीन हैं सर्वश्री व्योहार राजेन्द्रसिंह, डा. महावीर सरन, डा. गो. मो. रानडे, पं. कालिकाप्रसाद दीक्षित, श्री नर्मदा प्रसाद खरे, श्री हरि शंकर परसाई एवं डा. पति
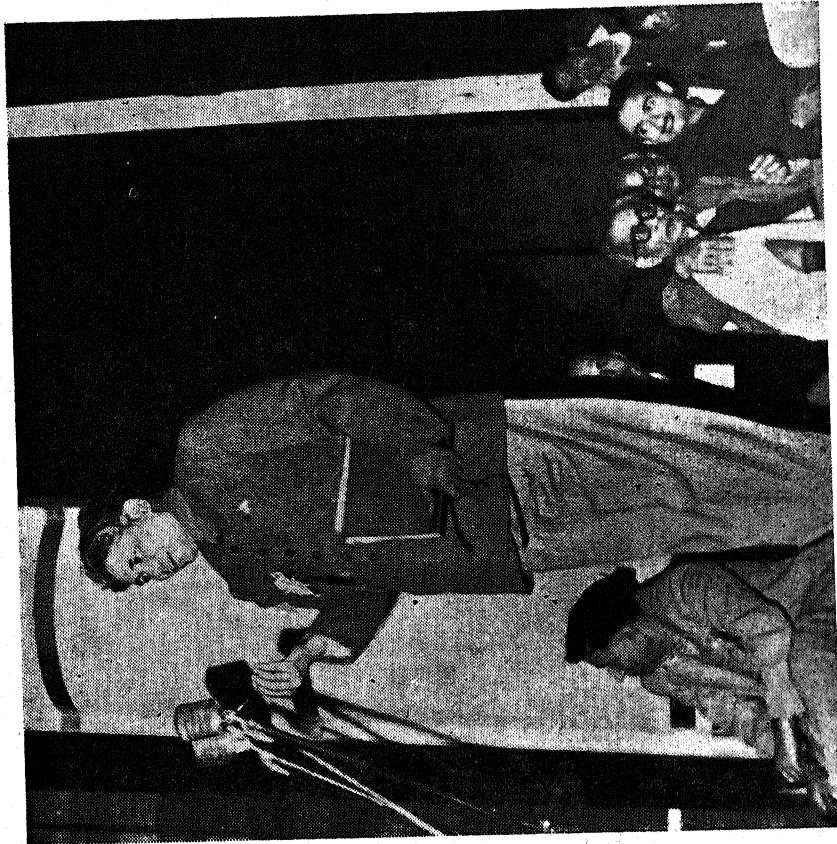
कवि–सम्मेलन

काव्यपाठ करते हुए कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष → डा. शिवमंगल सिंह सुमन ।

मंच पर आसीन है-डा. रघुवीरसिंह, श्री हरीनंदन चतुर्वेदी, श्री कुंजबिहारी पाण्डेय, श्री विष्णुदत्त अग्निहोत्री, श्री नरेन्द्र दीपक, श्री श्यामसोहन दुबे ।

करते हैं। हिन्दी सभी भाषाओं को बहिन मानती है और सबकी उन्नति चाहती है।

भाषा के सम्बन्ध में ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण होना चाहिये। भाषा विज्ञान पढ़े बिना यह बात बुद्धि में नहीं बैठती।

हर भाषा परम आदरणीय है क्योंकि यह मानव को पशु-पक्षियों से श्रेष्ठ सिद्ध करती है।

जब भारतीय भाषाएँ माध्यम होंगी विश्वविद्यालयों, उच्चन्यायालयों आदि में तो उन भाषाओं को बल मिलेगा। हिन्दी के विकास से भी भारतीय भाषाओं को बल मिलेगा लेकिन अँग्रेजी से यह बल नहीं मिल सकता।

हमें राष्ट्रीय हित और एकता की दृष्टि से सभी भाषाओं में समन्वय करना चाहिये।

●

—लोकतांत्रिक परम्पराओं का पालन करने के लिये शिक्षित प्रशासक वर्ग जन साधारण के बीच का भेदभाव व अन्तर हिन्दी से ही मिट सकता है।

—अंग्रेजी भाषा से भारतीय गणतन्त्र की लोकशाही उचितरूपेण पनप नहीं सकती। कुछ लाख अधिकारियों की सुविधा सहूलियत के लिये करोड़ों की जनसंख्या को विदेशी भाषा सिखाना कोई तर्क संगत नहीं जान पड़ता। शहरों की दो प्रतिशत आबादी ही हिन्दुस्थान नहीं है जो अंग्रेजी भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय हितों का प्रश्न हल करना चाहती है।

—"यह भारतीय पुरुषत्व एवं विशेषतः नारीत्व का अपमान है कि हमारे बालक और बालिकाएँ यह सोचने को उत्प्रेरित हों कि अंग्रेजी ज्ञान के बिना श्रेष्ठ समाज में प्रवेश पाना असम्भव है। यह इतना अपमानजनक तथा ओछा विचार है कि बर्दाश्त के बाहिर है। अंग्रेजों से छुटकारा पाना स्वराज्य के लिये एक बहुत जरूरी शर्त है।"

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

मराठी साहित्य

(एक विहंगमावलोकन)

डॉ० गा. मो. रानडे

मराठी-साहित्य का इतिहास साधारणतः विगत नौ सदियों का है। शिलालेखों पर अंकित कुछ मराठी अवतरणों का साहित्य की दृष्टि से विचार न किया जावे तो मराठी में सबसे पुराना उपलब्ध साहित्य कवि मुकुन्दराज का है। सन ११८८ में उनका लिखा हुआ 'विवेक सिंधु' यह मराठी का प्रथम काव्य ग्रंथ है। ओवी छंद में निबद्ध इस ग्रंथ की भाषा नितांत सुगम और अर्थ-वाहिनी है।

डॉ० गा. मो. रानडे

ग्यारहवीं सदी में महाराष्ट्र में स्थापित महानुभाव पंथ के कई संस्कृतज्ञ पंडितों ने मराठी में ग्रंथ-रचना की है। धर्म भाषा के पद पर मराठी को आसीन करने वाले इस पंथ ने निष्ठापूर्वक बहुजनों की मराठी भाषा में रचना की है। इनमें से कुछ ग्रंथ ज्ञानेश्वरी के भी पहिले के हैं यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है। ज्ञानेश्वरी में प्रयुक्त भाषा तत्कालीन साधारण मराठी जनता की बोलचाल की भाषा है जिसके माध्यम से संत ज्ञानेश्वर ने गीता का समुज्ज्वल दर्शन बहुजन हिताय महाराष्ट्र में बिखेरा। ठीक इसी उद्देश्य को लेकर महानुभाव ग्रंथकारों ने मराठी भाषा का उपयोग किया है। उनके द्वारा निर्मित सुन्दर काव्यग्रंथ तथा कुछ गद्य चरित्र ग्रंथ एवं स्थल वर्णनात्मक ग्रंथ मराठी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। महिंद्र भट्ट, भास्कर भट्ट, नरेन्द्र भट्ट, दामोदर पंडित इत्यादि पुरुष कवियों के

अलावा इस पंथ में मराठी की सर्वप्रथम कवयित्री महदम्बा ने भी कृष्ण-रुक्मिणी विवाह पर आधारित सुन्दर गीत रचना की है।

सन् १२९० में संत श्री ज्ञानेश्वर द्वारा ज्ञानेश्वरी के माध्यम से दिया गया विश्व बंधुता का स्निग्ध मधुर संदेश आज के युग में भी परम आवश्यक है। महाराष्ट्र के घर घर में ज्ञानेश्वरी एक शिरसावद्य धर्म ग्रंथ माना जाता है। ज्ञानेश्वर की परंपरा में आगे तीन सदियों तक संत कवियों की कई पीढ़ियों ने महाराष्ट्र के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक जीवन को अपने अमृत-मधुर काव्य कल्लोल से प्लावित किया है। ऐसा शायद ही कोई जाति अछूती रह गई हो कि जिसने मराठी को कम से कम एक संत-कवि न दिया हो। गोरा कुम्हार, रोहिदास चम्हार, बंका महार, सावता माली, नरहरी सुनार, सेना नाई, सजन कसाई, कान्होपात्रा वेश्या तथा जनी दासी इन सभी ने भक्ति पर काव्य रचना से मराठी को पावन किया है। इन सब में नामदेव के भक्ति-प्रेम से ओत प्रोत अभंगों का विशिष्ट स्थान है।

ज्ञानेश्वर के तीन सौ वर्ष बाद उनके द्वारा प्रवर्तित भागवत धर्म का प्रभावी प्रचार संत एकनाथजी ने किया। सन् १५३२ में उनका जन्म हुआ तब तक दक्षिण में इस्लाम की राजसत्ता स्थिरपद हो चुकी थी। ज्ञानेश्वर के बाद यादव राजसत्ता का अंत तथा मुस्लिम सत्ता का विस्तार ये महत्व की घटनाएँ घट चुकी थीं। इस नई राज्ययंत्रणा में हिन्दू धर्म, मराठी भाषा तथा साधु संतों को जो पीड़ा पहुँची उसकी अमिट छाप एकनाथजी से राम-दास तक की रचनाओं में पाई जाती है। भागवत तथा भावार्थ रामायण की रचना द्वारा एकनाथ ने भक्ति-मार्ग का प्रसार किया तथा भारूड नायक लोक गीतों के द्वारा सामाजिक-धार्मिक अवडंबरों पर टीका की। नामदेव तथा एकनाथ की, मराठी के साथ साथ हिन्दी में भी काव्य रचना उपलब्ध है।

शिवाजी के समकालीन तुकाराम तथा रामदास इन दोनों संत कवियों का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। तुकाराम के मुक्ति की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ पद प्रदान करने वाले अभंगों का पठन-गायन आज तक निरंतर होता आ रहा है। मानवता से परे तुकारामजी को धर्म की अन्य कोई व्याख्या मंजूर नहीं दीखती। धर्म के नाम पर जो दंभ-आडंबर समाज में पनपे हुए दिखाई दिये उन पर उन्होंने बड़ी निर्भीकता से कठोर प्रहार किये। तुकाराम को कुछ लोगों ने निवृत्तिवादी संत कहा है। परंतु शिवाजी की प्रबल इच्छा होते हुए

भी तुकारामजी ने उन्हें गुरुमंत्र देने से साफ इन्कार किया तथा उन्हें राजकाज के लिये प्रोत्साहित कर समर्थ रामदास के पास उन्हें भेजा। इस प्रसंग से उनके निवृत्तिवाद का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

तुकाराम के साथ शिवकालीन संतों में रामदास की महत्वपूर्ण भूमिका है। साधुता, राम भक्ति, स्वधर्म तथा स्वदेश प्रेम का उन्होंने निरंतर भ्रमण-पूर्वक प्रचार किया। उनका दासबोध ग्रंथ व्यावहारिक जीवन की ओर प्रेरित करने वाला तथा उत्तम पुरुष के लक्षणों का सीख देने वाला एक अभूतपूर्व ग्रंथ है। महाराष्ट्र की सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक परम्परा अक्षुण्ण बनाये रखने में संत कवियों ने जो हाथ बँटाया है उसी के फलस्वरूप शिवाजी तथा उनके बाद के पेशवाओं के लिये स्वराज्य स्थापना और साम्राज्य विस्तार संभव हो पाया है।

साधुसंत कवियों की भक्तिमयी आध्यात्मिक परंपरा का निर्वाह कलात्मक पद्धति से करने वाले पंडित-कवियों की एक समानान्तर धारा मराठी साहित्य में प्रवाहित हुई है। इन पंडितों के पास प्रत्यक्ष रूप से उपदेश देने के लिये साधुसंतों के समान आध्यात्मिक ऊँचाई नहीं थी। अतएव पौराणिक आदर्श स्त्री पुरुषों के चरित्रों का तथा भव्य उदात्त प्रसंगों का अपने काव्य ग्रंथों में उन्होंने सुंदर अंकन किया है। इनमें से कृष्ण भक्त महानुभाव कवियों का इसके पूर्व उल्लेख हो चुका है। एकनाथ के नाती कविवर मुक्तेश्वर मराठी के प्रथम कलाकवि माने जाते हैं। उन्होंने महाभारत के पाँच पर्वों की ओवी छंद में रचना की है जो अतीव प्रासादिक, अलंकृत तथा रससिद्ध है। दूसरे हैं वामन पंडित जिन्हें ज्ञानेश्वरी के समान मराठी में गीता-टीका करने का श्रेय प्राप्त है। परंतु ज्ञानेश्वरी की बराबरी यह ग्रंथ नहीं कर पाया। इन्हीं के आसपास के काल में नागेश, विट्ठल, रघुनाथ तथा सामराज इन पंडित-कवियों ने क्रमश: सीता स्वयंवर, रुक्मिणी स्वयंवर, नलदमयंती स्वयंवराख्यान तथा रुक्मिणीहरण काव्यों की रचना की। ये सब काव्य नितांत सुन्दर हैं।

मराठी भाषी जनसाधारण में श्रीधर और महीपती नायक दो कवि बहुत प्रसिद्ध हैं। सरल, सुबोध भाषा तथा ओवी छंद ये इनकी रचनाओं की विशेषता हैं। इनके पाडंव प्रताप, हरिविजय, रामविजय, शिवलीलामृत तथा भक्तिविजय, संतलीलामृत इत्यादि ग्रंथ आज भी हर मराठी घर में आबालवृद्ध-स्त्री-पुरुष चाव से पढ़ते हैं। ये दोनों पेशवाई के पूर्ववर्ती कवि हैं।

पेशवाओं के काल में मोरोपंत एक दिग्गज कवि हो गये हैं जिनकी आर्यावृत में विस्तृत ग्रंथ रचना उपलब्ध है। रामायण-महाभारत उनके प्रमुख विषय रहे हैं। भाषा की संस्कृत प्रचुरता तथा पांडित्य का दुर्निवार मोह, इनके कारण उन्हें जनसाधारण का कवि नहीं कहा जा सकता।

अभी तक जिन दो काव्य धाराओं का वर्णन किया गया उनका स्वरूप वास्तव में अखिल भारतीय है। क्योंकि उनके विषय, अध्यात्म एवं भक्ति, समूचे भारतवर्ष की विरासत कहे जा सकते हैं। उनके काव्य के स्रोत रामायण-महाभारत इत्यादि पर भी केवल मराठी का अधिकार नहीं माना जा सकता। स्वाभाविक ही असली मराठी कविता इसे नहीं कहा जाना चाहिये। मराठी जीवन का यथार्थ दर्शन हमें पेशवाकालीन शाहीरों के लावनी और पोवाडा नामक विशेष काव्य प्रकार में होता है। मराठी समाज के सुख-दुख, भाव-भावनाएँ, रहन-सहन, आशा-आकांक्षाएँ, वेश-भूषा, खान-पान, इत्यादि का मार्मिक चित्रण लावणी-पोवाडों में मिलता है। तत्कालीन तरुण मराठा सिपाहियों की वीरवृत्ति तथा वीरोचित शृंगार भावना की काव्यमय अभिव्यक्ति इस काव्य विशेष में हुई है। पेशवाई के अंतिम काल में महाराष्ट्र में शृंगार प्रधान लावनी का व्यसन समाज को पतनोन्मुख बना चुका था। इन शाहीरों में रामजोशी, अनंत फंदी, होनाजी, सगन, प्रभाकर, परशराम आदि विभिन्न जातियों के लोग थे। प्रभाकर-परशराम अंग्रेजी राज्य की महाराष्ट्र में स्थापना के बाद भी जीवित थे तथा उन्हें उदर निर्वाह के लिये अंग्रेज अफसरों तथा सेठ साहूकारों की चाटुकारिता अपनी कविता में करनी पड़ी।

सन् १८१८ में महाराष्ट्र में पेशवाई का अवसान होने के बाद कुछ समय तक सभी क्षेत्रों में शिथिलता तथा विषण्णता का वातावरण रहा। इस काल में मिशनरी लोगों ने सरकार की सहायता से मराठी में साहित्य निर्मिती के प्रयत्न किये। सन् १८१० में डॉ० विलियम कॅरे ने मराठी-अंग्रेजी कोश तैयार किया था। सन् १८२० के बाद बंबई के गवर्नर एल्फिन्स्टन की प्रेरणा से मराठी में ग्रंथों का निर्माण शुरू हुआ। मुद्रणालयों के प्रसार से ग्रंथ-निर्माण में बड़ी सहायता मिलने लगी। शब्द कोश, व्याकरण तथा शालोपयोगी और अनूदित पुस्तकों का अगले कुछ वर्षों में प्रकाशन हुआ। संस्कृत के कुछ नाटकों का मराठी में अनुवाद तथा प्राचीन मराठी कवियों के काव्यों का संपादन ये इस काल की उल्लेखनीय साहित्य निर्मिति है। परन्तु

१६ वीं सदी के पूर्वार्ध में निर्मित कुल ग्रंथ रचना बिलकुल मामूली सी ही है। इस कालखंड में दर्पण, दिग्दर्शन, प्रभाकर, ज्ञान प्रसारक, ज्ञानप्रकाश इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं ने सामाजिक-राजनैतिक जागृति का भरसक प्रयत्न किया। बंगाल तथा अन्य प्रांतों के समान मराठी पत्रकारिता का भी प्रारंभ से ही जनजागरण ही महान उद्देश्य रहा है। इस काल में बालशास्त्री जांभेकर, लोकहितवादी, भाऊ महाजन आदि प्रमुख लेखक हुए जिन्होंने विभिन्न सामाजिक प्रश्नों को लेकर कई पत्र तथा लेख लिखे।

साहित्य उच्चतर आनंद देने वाला एक प्रमुख साधन है इस बात का भी इन नियतकालिकों ने ध्यान रखा। सन् १८५७ में बंबई विश्वविद्यालय की स्थापना तक के काल में इन पत्रों ने साधारणतः ईसाइयों के धर्म प्रसार का घोर विरोध, स्वधर्म के वास्तव रूप की विवेचना, सामाजिक कुरीतियों से होने वाली हानि, इत्यादि विषयों पर मार्गदर्शन किया। १८५७ के बाद से राजनैतिक दृष्टि से जनजागृति का कार्य भी इन पत्रों के द्वारा निर्भयतापूर्वक शुरू हुआ। सन् १८७४ में विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने 'निबंधमाला' प्रारंभ की जिसमें उन्होंने मुख्यतः स्वदेश-स्वभाषा-स्वधर्म की भावना क्रमशः प्रज्वलित करना शुरू किया। शीघ्र ही उसकी प्रखरता एवं दीप्ति अंग्रेज शासनकर्ताओं के लिये असहनीय हो उठी। परिणामतः सन् १८७८ में पहिली बार प्रेस एक्ट लगाकर सरकार ने पत्रों की लेखन स्वतंत्रता को छीनने का प्रयास किया। चिपलूणकर जी को आधुनिक मराठी गद्य का जनक माना जाता है।

आगरकर तथा तिलक जी ने मिलकर कुछ वर्षों तक केसरी तथा मराठा पत्रों के द्वारा राजनैतिक उद्‌बोधन किया। परंतु शीघ्र ही उनमें सामाजिकता को प्राथमिकता दी जावे या राजनीति को दी जावे इस बारे में मतभेद उभर उठा। फलस्वरूप आगरकर 'सुधारक' पत्र के माध्यम से तथा तिलक 'केसरी' के द्वारा क्रमशः सामाजिक तथा राजनैतिक विचार जागृति का कार्य करने लगे। आगरकर जी ने कहा कि नवागत पाश्चिमात्य विचारों के स्वीकार के बिना हमारी कमजोरियाँ दूर नहीं हो सकेंगी और जीर्णशीर्ण कल्पनाओं का दास रहने वाला समाज राजनैतिक स्वतंत्रता के लिये पात्र नहीं बन सकेगा। इसी विश्वास का उनके ओजस्वी लेखों में प्रतिपादन किया गया है। विषम-विवाह, स्त्रीदास्य विमोचन विधवाओं की करुण दारूण अवस्था, जातिभेद निर्मूलन इत्यादि प्रश्नों को आगरकर जी ने प्रभावशाली भाषा में उछाला है। उनके शीघ्र बाद हुए आधुनिक मराठी के मूर्धन्य कवि केशवसुत तथा

शीर्षस्थ उपन्यासकार हरिनारायण आप्टे की कृतियाँ इन्हीं विचारों से अनुप्राणित हुई हैं।

पुरातन-विरुद्ध नवीन मत के अभिमानी लेखकों की परम्परा टीका-टिप्पणी करने वाली कुछ नाट्य तथा कथाकृतियाँ इस काल में प्रकाशित हुईं। परंतु उनका विशेष साहित्यिक मूल्य इसलिये नहीं है कि उनमें बड़े ही निकृष्ट ढंग से प्रचार किया गया है। चिपलूणकर द्वारा प्रचलित की हुई सुडौल एवं सुगठित मराठी गद्य-शैली से प्रभावित पीढ़ियों ने उनके बाद मराठी गद्य को क्रमशः अधिक सुंदर, सुस्पष्ट तथा ललित बनाने का प्रयत्न किया। इस संदर्भ में परांजपे, कोल्हटकर, केलकर, खाडिलकर, जोशी तथा वर्तमान के फड़के, खांडेकर, काणेकर इत्यादि लेखकों का कार्य अविस्मरणीय है। क्रमशः मराठी निबंध का वस्तुनिष्ठता की ओर से आत्मनिष्ठता की ओर (Objectivity से Subjectivity) झुकाव स्पष्ट होता गया है। उपदेशक अथवा लोक शिक्षक की भूमिका छोड़कर आज का निबंध विशिष्ट प्रश्नों के संबंध में लेखक की वैचारिक तथा भावनात्मक प्रतिक्रिया सहज सुहृद्-भाव से उद्‌घाटित करता है। यह व्यक्तिनिष्ठता तथा वैचारिक स्वतंत्रता आज के समग्र मराठी साहित्य के प्रमुख अंग हैं।

मराठी नाटक में प्राचीन तथा अर्वाचीन मतप्रणाली की पुष्टि करने का प्रयत्न प्रारंभ में हुआ। परंतु कला की दृष्टि से इन कृतियों का विशेष मूल्य नहीं था यह बात इसके पूर्व कही जा चुकी है। नवीन शिक्षित पीढ़ी ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में संस्कृत तथा अंग्रेजी नाटकों के कुछ सरल अनुवाद कर उन्हें रंगमंच पर प्रयुक्त किया। परंतु मराठी नाटकों की दीप्तिमान परिपाटी शुरू करने का श्रेय अण्णासाहब किर्लोस्कर को ही है। सन १८८० में किर्लोस्कर नाटक मंडली स्थापित कर उन्होंने शाकुंतल, सौभद्र, रामराज्यवियोग आदि नाटक अभिनीत किये। नाटकों की कथावस्तु पौराणिक होते हुए भी संगीतानुकूल पद्यरचना तथा सुगम भाषाशैली के कारण उनके नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हुए। मराठी नाटक मराठी भाषियों की एक अभिमानास्पद वस्तु है। मराठी समाज की नाट्याभिरुचि सर्वविदित है। आज भी अण्णा के नाटकों का प्रयोग सफलता से होता है।

देवल का संगीत शारदा नाटक विषम विवाह पर आधारित एक अनुपम कृति है। उनका संगीत संशय कल्लोल अपनी नाटयपूर्ण रचना, सुगम

भाषा तथा कर्ण मधुर संगीत के कारण एक सर्वदा सफल नाटक है जिसके सफल प्रयोग आज भी हुआ करते हैं। श्री: कृ. कोल्हटकर ने मराठी में मोलियर की पद्धति से स्वतंत्र नाट्य रचना का सूत्रपात किया। उनके सामाजिक नाटकों में कृत्रिम भाषा तथा अलंकारिकता का प्राचुर्य होने से वे नाटक प्रायोगिक दृष्टि से विशेष महत्व नहीं रखते।

खाडिलकर को मराठी नाटकों का आचार्य माना जाता है। शेक्सपीयर की पद्धति, संगीत एवं गद्य नाटकों की सुश्लिष्ट रचना, रूपकात्मक पद्धति से तत्कालीन असंतोष तथा देश भक्ति पर विचारों का प्रसार, गांधीवादी विचार-धारा का पुरस्कार इत्यादि गुणों के साथ ही उनके नाटकों की प्रयोग-क्षमता असाधारण कोटि की थी। यही कारण है कि उनके कीचक वध, मानापमान, सत्त्वपरीक्षा, स्वयंवर इत्यादि नाटकों के कारण बीसवीं सदी का एक तिहाई काल मराठी रंगमंच में वैभवशाली रहा है।

नाटक व्यक्ति के लिये नहीं बल्कि समुदाय के लिये होता है। इस तत्त्व को मामा वरेरकर के समान शायद ही किसी अन्य नाटककार ने यथार्थ सिद्ध किया हो। इनकी लेखनी ने कथा-उपन्यास से अधिक नाट्य लेखन किया है। राष्ट्रजीवन में उद्भूत किसी भी सामाजिक-राजकीय समस्या को नाटक के माध्यम से साकार कर देना मामा के लिये बायें हाथ का खेल-सा था। दहेज प्रथा, असहकारिता, अस्पृश्योद्धार, मालिक-मजदूर अथवा किसान-जमींदारों की समस्या, अहिंसात्मक आंदोलन, लड़ाई में खोये हुए तथा अनेक वर्षों बाद स्वदेश लौटे हुए लोगों की उलझनें इत्यादि प्रश्नों पर नाटक लिखकर मामा वरेरकर ने विगत ५०-६० वर्ष के सामाजिक इतिहास को मानो जीता-जागता कर दिया है। उनके लिये नाटक प्रचार का सर्वश्रेष्ठ साधन था। आधुनिकतम नाट्यतंत्र को स्वीकार करने वाले सुधारवादी नाटककारों में मामा का स्थान सर्वोपरि है। सामाजिक जागृति में मराठी नाटकों का श्रेय निर्विवाद है।

'एकच प्याला' के द्वारा गडकरी ने तथा 'विद्याहरण' के द्वारा खाडिलकर ने मद्यपान के घोर परिणामों का अमिट एवं मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

सवाक् चित्रपटों के आगमन के बाद कुछ वर्षों तक रंगभूमि को संकट-कालीन अवस्था से गुजरना पड़ा परंतु उस काल में अत्रे, वर्तक, रांगणेकर, वरेर-

कर आदि ने उसका जीवन-स्रोत अखंडित रखने का भरसक प्रयत्न किया। सौभाग्य से मराठी रंगमंच का भविष्य अब उज्ज्वल प्रतीत होता है। महाराष्ट्र में फिर से नये नाटकों के अनगिनत प्रयोग जहाँ तहाँ हो रहे हैं। व्यावसायिक रंगमंच भी फिर से पुनरुज्जीवित हो उठा है। आज के प्रमुख नाटककार पु. ल. देशपाँडे, भावे, बाल कोल्हटकर, वसंत कानेटकर, विजय तेंडुलकर, कुसुमाग्रज इत्यादि हैं।

ब्रिटिशकाल के पूर्व मराठी कविता ईश्वर-चरणों में बिलीन थी तथा उसकी दृष्टि पारलौकिक हुआ करती थी। अब अंग्रेजी के अध्ययन का अवश्यंभावी परिणाम मराठी की अन्य साहित्य शाखाओं के समान कविता पर भी होना स्वाभाविक था। व्यक्तिनिष्ठता, लौकिक दृष्टि, जीवन के ज्वलंत प्रश्न, सामान्य विषयों में गहन आशय खोजने की प्रवृत्ति तथा नवागत विचारों और भौतिक साधनों का स्वागत इत्यादि विशेषताओं के कारण उन्नीसवीं सदी के उतरार्ध से मराठी कविता एकदम पहिले की अपेक्षा भिन्न दिखती है। इस नवीनता के उन्नायक केशवसुत हैं जिन्हें आधुनिक मराठी कविता का जनक कहा जाता है। इनकी कविता में अंतर्बाह्य नवीनता का स्वीकार है। आगरकर की विचार प्रणाली से उद्वेलित सामाजिक तथा राजकीय चिंतन इस नवयुग की कविता की विशिष्टता है। सामाजिक सुधार का आवाहन तथा राजकीय निर्भीकता की प्रेरणा के साथ-साथ समता-स्वतंत्रता-बंधुता का प्रतिपादन इस कविता में निहित है। कवि विनायक, गोविंद, सावरकर की कविता देशभक्ति से निखरी हुई है। रविकिरण मंडल नामक कवियों के एक मंडल ने कविता को अधिक कलात्मक तथा गेय बनाने का प्रयास किया तथा व्यक्तिगत प्रयण भावना का नि:संकोच आविष्कार करने की प्रथा भी शुरू की। इनके द्वारा निर्मित भावगीत सुन्दरता एवं गेयता के कारण लोकप्रिय हुए। यशवंत गिरीश, माधव ज्यूलियन के अलावा तांबे के भावगीत भी बड़ी संख्या में ध्वनिमुद्रित हो चुके हैं और आज तक गाये जाते हैं। ग्रामीण जीवन से संबंधित समस्याएँ तथा दलितोद्धार की उत्कंठा भी इन कवियों में स्पष्ट झलकती है। स्वतंत्रता संग्राम के तीव्रतर होने के साथ परतंत्रता की घृणा तथा मानवता की प्रतिष्ठापना मराठी काव्य में उत्कटता से निखर उठी। कुसुमाग्रज तथा अनिल के नाम इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। अनेक कवियों के वे प्रेरणास्रोत हैं। आज भी वे अव्याहत रूप से कविता लिख रहे हैं।

विगत १०–२० वर्षों से 'नवकविता' के नाम से एक नयी वास्तववादी कविता मराठी में अवतीर्ण हुई है। इसमें इलियट का तुच्छतावाद तथा ऑडेन का समाजवाद ये दो धाराएँ दृष्टिगोचर होती हैं। मराठी में मर्ढेकर, य० द० भावे, शरच्चंद्र, मुक्तिबोध, विंदा करंदीकर आदि इस संप्रदाय के प्रमुख कवि हैं। मुक्तछंद का बाह्य आवरण तथा देश की विपन्न अवस्था से उद्भूत सार्वयिक विफलता और घोर निराशा की भावना की अभिव्यक्ति इस नवकविता का स्वरूप कहा गया है। परन्तु बारीकी से देखा जावे तो इस नई कविता में न तो विपन्नता से मुक्ति का कोई मार्गदर्शन है और न साधारण वाचक के समझने लायक कोई विषय है। दुर्बोधता, क्लिष्टता, वीभत्सता तथा विक्षिप्तता का गद्यप्राय भाषा में उद्घाटन नवकविता के प्रमुख लक्षण हैं। इसमें न प्रसाद है न सूचकता जो कि काव्य के आवश्यक गुण माने जाते हैं। मानवता के उद्घोष मात्र से यह काव्य जनहितकारी या आकर्षण कैसे बन सकता है ?

१६ वीं सदी से आज तक मराठी कथा कादंबरी का प्रचुर मात्रा में निर्माण हुआ है। हरि नारायण आप्टे के उपन्यास तत्कालीन समाज-जागृति में महत्वपूर्ण कार्य कर चुके हैं। प्रो० फड़के, खांडेकर, माडखोलकर, पी. वाय्. देशपांडे आदि विद्यमान उपन्यासकार ज्येष्ठ पीढी के हैं। ललित भाषा तथा सुडौल रचना के कारण प्रो. फड़के का स्थान अद्वितीय है। खांडेकर की भाषा अलंकृत है और वे ध्येयदर्शी आदर्शवादी उपन्यासकार हैं। माडखोलकर-देशपांडे के उपन्यास राजनैतिक मतप्रणाली की विस्तार से चर्चा करते हैं। आज के तरुण पीढ़ी के उपन्यासकारों में श्री. ना. पेंडसे, गो. नी. दांडेकर, र. वा. दिघे, व्यंकटेश माडगूलकर प्रमुख हैं। प्रादेशिक स्तर पर कथा रचना तथा ग्रामीण जीवन का चित्रण कोंकण, गोवा, कोल्हापूर आदि विशिष्ट प्रदेशों के आधार पर इन्होंने किया है। इनके अलावा मराठी कथा के क्षेत्र में अनेक नामवर लेखक-लेखिकाएँ हैं जिन्होंने मराठी सारस्वत का भंडार भरा है।

मराठी में आलोचनात्मक ग्रंथों का क्षेत्र समृद्ध करनेवाले लेखकों में रा. श्री. जोग, द. के केलकर, वा. ल. कुलकर्णी, डॉ० रा. शं. वालिंबे, डॉ० ग. त्र्यं. देशपांडे, कुसुमावती देशपांडे, कवीश्वर आदि के प्रमुख स्थान हैं जिन्होंने पौर्वात्य तथा पाश्चात्य आलोचना पद्धतियों का परिचय कराया तथा उनके तुलनात्मक अध्ययन द्वारा नवीन प्रेरणाओं का स्रोत बहाया।

बंधुओ, स्थल-काल से मर्यादित इस छोटे से निबंध में मराठी साहित्य का केवल विहंगम अवलोकन ही संभव हो पाया है। अनजाने कुछ प्रमुख साहित्यकारों का नामोल्लेख न हो पाया हो तो उन शब्दसृष्टि के ईश्वरों से मैं क्षमा प्रार्थना करता हूँ। इससे और अधिक कुशलतापूर्वक मराठी साहित्य का परिचय इस विद्वत्-परिषद में कराने में अपने आपको मैं अक्षम पाता हूँ। इसलिये आपसे यही विनम्र निवेदन है कि 'क्षमस्व'।

धन्यवाद।
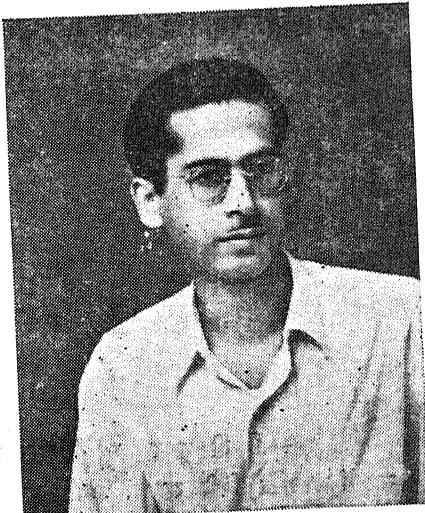
—हिन्दी हमारी माँ है और अपनी ही माँ को जो अपने घर में लाने के लिये सालों, वर्षों की सीमा बाँधते हैं वे या तो पागल हो गये हैं या किसी स्वार्थ ने उन्हें अन्धा बना दिया है।

—राजर्षि टण्डन

उड़िया साहित्य का क्रम-विकास

—डॉ० त्रिविक्रम पति

प्रस्तुत विषयालोचना के पूर्व मुझे मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यकर्त्ता और विशेष कर भाई परसाई जी के प्रति अपना आभार प्रकट करते हुए हर्ष हो रहा है। साहित्य-सेवी एवं दो-पुश्त से साहित्य सेवियों के वंशज होते हुए भी संस्थागत कार्यक्रमों से मैं प्रायः अलग ही रहा किन्तु इस अवसर पर परसाई जी के आव्हान की उपेक्षा करना मेरे लिये अनुचित होगा और शायद संस्थाओं के बाहर पला हुआ साहित्यिक संस्था-बद्ध साहित्यिकों के सामने एक निजी विचार प्रस्तुत कर सकेगा, इस भावना से प्रभावित होकर मैं आपके समक्ष उड़िया-साहित्य के क्रम-विकास के संबंध में कुछ अपने विचार रखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इस लेख को प्रस्तुत करने में नगर के ख्यातनामा चित्रशिल्पी श्री दिलीप राजपुत्र और श्री विजय ठाकुर तथा हमारे गणित विभाग के डॉ० अहमद एवं श्री चतुर्वेदी से मुझे जो सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिये मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

डॉ० त्रिविक्रम पति

उड़िया-साहित्य के इतिहास सम्बन्धी कई एक लेख सर्वथा उल्लेखनीय हैं। १९८७ और १८९८ के Asiatic Society की पत्रिका में श्री मनमोहन

चक्रवर्ती जी की लिखी हुई आलोचना; सन् १९१६ में पुस्तकाकार प्रकाशित उड़िया साहित्य के इतिहास के संबंध में श्री तारिणी चरण जी के आलोचनात्मक विचार; १९२१, १९२३ और १९२५ में प्रकाशित श्री विजय चन्द्र मजूमदार जी द्वारा सम्पादित Typical Selections; १९२१ और १९२५ में श्री अपर्णा पण्डा द्वारा 'छन्द-चन्द्रिका' एवं कवि जीवनी नाम से प्रकाशित उत्कल साहित्य के इतिहास के प्रथम तथा द्वितीय भाग; 'उत्कल-साहित्य' नामक पत्रिका में श्री मधुसूदन दास द्वारा लिखित 'उड़िया-भाषा एवं प्राचीन उड़िया साहित्य' नामक आलोचना। १९२८ में पंडित विनायक मिश्रजी द्वारा लिखित 'उड़िया साहित्य का इतिहास।' १९२९ में श्री जगबन्धु सिंह द्वारा लिखित 'प्राचीन उत्कल में उड़िया भाषा तथा साहित्य सम्बन्धी आलोचना।' १९४५ में प्रकाशित तथा श्री सूर्यनारायण दास जी द्वारा लिखित 'उड़िया साहित्य का परिचय।' श्री जानकी वल्लभ महन्ती की अंग्रेजी में लिखी हुई 'Oriya Literature'; श्री प्रिय रंजन सेन द्वारा लिखित 'Modern Oriya Literature'; पंडित नीलकण्ठ दास जी द्वारा रचित 'उड़िया साहित्य का क्रम परिणाम' नामक आलोचना ग्रंथ, इत्यादि।

उड़िया साहित्य के क्रम-विकास की धारा को लेकर इन सभी लेखों तथा ग्रंथों में जो मतैक्य परिलक्षित होता है उसके कारण की एक विशद धारणा श्री मधुसूदन दास जी की निम्न पंक्तियों से मिल सकती है—"उड़ीसा में आज तक पुरातत्व के अनुसंधानकर्त्ता विरल हैं अतः अतिपुरातन उड़िया ग्रंथों का उद्धार आज तक नहीं हो सका। हण्टर आदि पाश्चात्य पुरातत्वविद मनीषियों ने जिन ग्रंथों का नामोल्लेख किया है उन सभी के सहारे भी कवियों के संबंध में विशेष विवरण प्रकाश में नहीं आया।" पंडित सूर्यनारायण दास जी जैसे पंडितों का मत यह है कि ऐतिहासिक काल-विभाग के अनुसार साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन निरापद तथा सहज है परंतु इसकी समालोचना देवीप्रसन्न पटनायक जी की लिखी हुई उड़िया साहित्य की इतिहास आलोचना नामक प्रबंध में मिलती है। समयाभाव के कारण इस अवसर पर उड़िया साहित्य-विकास की अध्ययन-पद्धति के संबंध में जो विभिन्न मतवाद और उनमें जो अन्योन्य-असामंजस्य लक्षित होता है मैं उनकी व्याख्या नहीं करना चाहता।

उड़िया साहित्य के विकास में सामान्यतः तीन प्रधान काल लक्षित होते हैं:—

सन् १४०० से १६५०

सन् १६५० से १८५०

और सन् १८५० के बाद (Post 1850),

जिनको कि आदियुग, मध्ययुग तथा आधुनिक युग की संज्ञा दी जा सकती है। आदियुग की सर्वश्रेष्ठ रचिनाएँ हैं –सारला दास जी रचित 'महाभारत', बलराम दास जी रचित 'रामायण', जगन्नाथ दास जी रचित 'भागवत', अच्युतानंद दास जी रचित 'हरिवंश' इत्यादि। इनके अतिरिक्त, 'कोयिली-कविता', 'चौंतीसा कविताएँ', भजन, स्तुति' इत्यादि, और 'हारावली' इत्यादि रसात्मक गीतिकाव्य। गद्य-साहित्य में सबसे प्रधान है पुरी जगन्नाथ मंदिर तथा राजाओं का इतिहास, यथेष्ट शुद्ध उड़िया में लिखित 'मादलापांजी'।

इस आदियुग की पृष्ठभूमि में श्री चैतन्य देव जी की उड़ीसा यात्रा तथा उड़ीसा के राजा प्रताप रुद्र देव का वैष्णव धर्म में दीक्षित होना, प्रभावशाली घटनाएँ हैं। इस युग की सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ बलराम, जगन्नाथ, अच्युतानन्द, यशोवन्त तथा अनन्त, "दास" उपाधि विभूषित, इन पंच सखाओं की लेखनी का अवदान रहीं एवं इस युग का साहित्य भक्ति तथा धर्मभावनाओं से आप्लावित चिन्ता-धारा से प्रभावित हुआ था।

इसके परवर्ती मध्य-युग में रसों का परिवेषण करने के लिये मानव-जीवन के विभिन्न विभागों को लेकर बहुत सी काव्य-कृतियों का उद्भव हुआ। धार्मिक दृष्टिकोण गौण ही रहा। इस युग को सर्वश्रष्ठ काव्यकार राजा उपेन्द्र भंज जी के नाम से, भंज-युग भी कहा जाता है। १५६८ में उत्कल में मुसलमानी आधिपत्य प्रतिष्ठित हो गया, एवं तत्पश्चात् स्थानीय नरपतियों की शक्ति क्रमशः अवलुप्तप्राय हो गई। इसका एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि राजवंश के लोग जातीय-अभिरुचि के अनुकल साहित्य, कला, दर्शन इत्यादि के प्रति आकृष्ट होने लगे। इस युग के लेखकों को इस से यथेष्ट प्रोत्साहन मिला। बाण भट्ट, भारवि, श्री हर्ष इत्यादि की रचनाओं को आदर्श मान कर एवं "साहित्य दर्पण" आदि काव्य-मीमाँसा ग्रन्थों के आधार पर साहित्य सृजन प्रगति करने लगा। "चित्रकाव्य" की पद्धति पर बहुत जोर दिया जाता था, तथापि, सौन्दर्य-बोध एवं जीवन-दर्शन का समन्वय इन काव्यकृतियों में भूरि-भूरि परिलक्षित होता है। संक्षेप में

इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस युग में अन्यून एक शत छन्दों का सृजन हुआ। अष्टादश शताब्दी के प्रथम चरण में तो उपेन्द्र भंज जी के लिखे हुए "बैदेहीश-विलास" काव्य ने एक नवीन धारा का प्रवर्तन कर दिया। इसके साथ ही साथ चौपदी, चम्पू, महात्म्य एवं गद्य काव्य का आवाहन किया। अध्यापक श्री गौरी कुमार ब्रह्मा जी के शब्दों में :—

"Jagannath Das, the celebrated author of the Bhagwat sowed the seeds of interest of the common man in the study of Oriya literature and the age of Bhanj reaped the harvest."

इस युग के और विशेष उल्लेखनीय साहित्यकार हैं —सर्वश्री दीन कृष्णदास, अभिमन्यु सामन्त सिंघार, ब्रजनाथ बड़जैना, कविसूर्य बल्देव रथ, यदुमणि महापात्र, गोपाल कृष्ण पटनायक, वनमाली पटनायक इत्यादि। ब्रजनाथ जी द्वारा रचित "समरतरंग" जिसमें कि उत्कल प्रान्त के नरपतियों से मराठों का युद्ध वृत्तान्त वर्णित है, एक विशेष स्थान रखता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम पाद में, जबकि उड़ीसा को अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार किये प्रायः एक शताब्दी हो चुकी थी, एवं पाश्चात्य शिक्षा तथा परम्परा से प्रभावित होकर उड़ीसा का बुद्धिजीवी वर्ग एक नूतन दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास कर रहा था आधुनिक युग का शिला-न्यास एक दृष्टि से कविवर श्री राधा नाथ राय जी ने किया। राधानाथ जी के सम-सामयिक श्री फकीर मोहन सेनापति, जिनको उड़िया उपन्यास-कारों में सर्वाग्रगण्य माना जाता है, श्री मधुसूदन राव, जो "भक्त कवि" नाम से सुपरिचित हैं, श्री गंगाधर मेहेर, श्री नंदकिशोर वल आदि अनेक लेखकों ने उड़िया साहित्य की समृद्धि में सहयोग दिया।

ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिक उड़िया नाटकों का आविर्भाव कुछ देर से ही हुआ। राधा और कृष्ण के प्रेम वृत्तान्त को लेकर प्राचीन उड़िया साहित्य में कुछ राम-लीलाएँ रचित हुई थीं। आधुनिक युग में सर्वश्री रामशंकर राय, भिखारी चरण पटनायक, अश्विनी कुमार घोष एवं काली-चरण पटनायक इत्यादि ने नूतन नाट्य-पद्धतियों का सूत्रपात करके रंगमंच को प्रोत्साहन दिया।

राधानाथ जी को आधुनिक उड़िया काव्य का पट्ट-पुरोधा तथा फकीर

मोहन जी को आधुनिक गद्य-साहित्य का अवतारक माना जाता है। राधानाथ युग में प्राचीन-किम्बदन्ती, लोक-गाथा, जातीय-चरित्र-चित्रण, वीरों का आख्यान इत्यादि से लेकर प्रकृति के अनुपम शोभा-वर्णन तक प्रायः सब कुछ साहित्य में आ गया था। उसके पश्चात भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों की भाँति उत्कल प्रान्त में भी जो राष्ट्रीय चेतना का अभ्युदय हुआ, उसके फलस्वरूप काव्य-रीति तथा काव्यिक-चिन्ताधारा में एक नवीन उन्मादन और नवजागरण का स्फुरण हुआ। इस राष्ट्रीय चैतन्योन्मुख युग को "गोप-बन्धु-युग" अथवा "सत्यवादीयुग" कहा जाता है। स्वर्गीय उत्कल-मणि गोप बंधु दास जी ने, मधुबाबू से एक भिन्न दृष्टिकोण के आधार पर, उत्कल के स्वाधीनता-संग्राम के कर्णधार पद को सँभाला।

उनकी प्रेरणा से वैप्लविक राष्ट्रीय जीवन पद्धति की शिक्षा के लिये उन्मुक्त मार्ग-प्रदर्शित करने वाले 'सत्यवादी विहार" नामक शाला में उत्कल के प्रधान साहित्यिक, दार्शनिक तथा इतिहासज्ञों ने अपनी ओजस्विनी लेखनी द्वारा न केवल जातीय जीवन को नव आमंत्रण दिया वरन् अंततोगत्वा जातीय साहित्य के विकास में बहुमूल्य देन दी। गोप बन्धु विश्व जीवन (Universal Humanism) के प्रति सदैव जागरूक थे। उनके काव्य-ग्रंथों तथा सम्पादकीय लेखों में विश्व-मैत्री-'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सार्वभौम मंत्र एवं उसके साथ ही जातीय आभिजात्य एवं तीव्र राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति स्पष्ट विद्यमान है।

श्री विश्वनाथकर जी द्वारा सम्पादित 'उत्कल साहित्य,' श्री ब्रजसुन्दरदास जी द्वारा सम्पादित 'मुकुर' तथा 'उत्कल मणि', गोपबन्धु जी द्वारा सम्पादित 'सत्यवादी' एवं 'दैनिक समाज' इत्यादि पत्रिकाओं ने उत्कल साहित्य की धारा को परिवर्धित तथा साहित्यिक रुचि को परिमार्जित करने में अपूर्व योग दिया। 'सत्यवादी-युग' की सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ गोपबन्धु जी की 'बन्दीर-आत्मकथा', 'काराकविता', 'धर्मपद' इत्यादि आध्यात्मिकता पर प्रतिष्ठित मुक्ति-पिपासु कविप्राण की सहज तथा मनोज्ञ अभिव्यक्तियाँ हैं। "सत्यवादी युग' के अन्य प्रतिनिधि लेखकों में पंडित नीलकण्ठदास, जिनकी 'आत्म-जीवनी' पर इस वर्ष का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है, पंडित गोदावरीश मिश्र इत्यादि प्रमुख हैं और कवयित्रियों में श्रीमती कुन्तलाकुमारी जी का नाम स्मरणीय है।

फकीर मोहन के औपन्यासिक दृष्टिकोण से किञ्चित भिन्न सामाजिक मान्यताओं एवं रीति-नीतियों की समालोचना को लक्ष्य मानकर एक तरफ बाबू गोपालचन्द्र प्रहराज जी ने व्यंगात्मक रचनाओं की सृष्टि की तथा दूसरी ओर श्री विश्वनाथकर जी ने भावगर्भक, विवेचनापूर्ण प्रबन्धों की। विश्वनाथकर महाशय की उत्साहपूर्ण वाणी से प्रेरित होकर जिन प्रबन्धकारों ने आधुनिक उड़िया गद्य साहित्य को विभवशाली बनाया, उनमें प्रमुख नाम श्री रत्नाकर पति जी का है। उनके 'प्रबन्ध प्रकाश', 'स्वप्नतत्व' एवं 'विवर्तनवाद' आदि धारावाहिक प्रबन्ध-माला ने उड़िया गद्य साहित्य में एक स्वस्थ तथा बलिष्ठ बौद्धिक वातावरण का निर्माण किया है।

इन लेखकों के पश्चात् नई पीढ़ी के गद्य-सृजन में एक रिक्तावस्था अनुभूत हो रही है। प्रबन्ध-रचना नव लेखकों के लिये प्रायः दुष्कर ही हो रही है। संस्कृत का अज्ञान अथवा स्वल्पज्ञान तथा गम्भीर चिन्तन का अभाव ही इस प्रतिकूल अवस्था के लिये उत्तरदायी है।

उपन्यास-साहित्य में श्री कालिन्दी चरण पाणिग्राही जी के 'माटीर मणीष' (मिट्टी का मनुष्य) के स्तर तक केवल कान्हुचरण जी का सामाजिक उपन्यास 'का' आदि अत्यल्प संख्यक उपन्यास पहुँच पाये हैं। व्यंग्यात्मक कथा-साहित्य में जैनामणि, नरेन्द्र कुमार तथा डा० हेमकान्त जी के नाम उल्लेनीय हैं, एवं लघुकथा में सर्वश्री गोदावरीश महापात्र, राजकिशोर राय एवं मनोजदास जी को प्रतिनिधित्व का श्रेय दिया जा सकता है। पंडित नीलकण्ठदास जी को प्रतिनिधित्व का श्रेय दिया जा सकता है। पडित नीलकण्ठदास जी द्वारा सम्पादित 'नव भारत' तथा श्री बालकृष्ण कर जी द्वारा सम्पादित 'सहकार' के बाद श्री हरे कृष्ण मेहताब जी द्वारा सम्पादित 'झंकार' मासिक सराहनीय प्रयास हैं। परन्तु पत्रकारिता का स्तर सामान्यतः विशेष उन्नत नहीं है।

काव्य की दिशा में भी बहुत संतोषजनक स्थिति नहीं है। 'सबुज युग' के प्रवर्तकों में से डा० मायाधर मानसिंह तथा पद्मश्री शच्ची राउत राय एक दृष्टि से अत्याधुनिक उड़िया काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं एवं इनके उपरान्त सर्वश्री रवीन्द्रनाथ सिंह, राधामोहन गढ़नायक, अनन्त पटनायक, गुरुप्रसाद महन्ती, रमाकान्त रथ आदि की काव्य-कृतियाँ सुरुचिपूर्ण हैं।

अध्यापक श्री कुंजबिहारी दास जी का एक विशिष्ट अनुदान भी है, परन्तु मौलिक, साधनानिष्ठ कवियों की संख्या वास्तव में बहुत ही परिमित है ।

परिशेष वक्तव्य यही है कि अत्याधुनिक अंग्रेजी तथा बंगला साहित्य के अंधानुकरण से उड़िया साहित्य के लिये स्वयं को अछूता रखना नितान्त आवश्यक है । इसके साथ ही राष्ट्र भाषा हिन्दी के साहित्य के साथ उत्कल के प्रान्तीय साहित्य के योगसूत्र की स्थापना एक अनिवार्यता है । इस दिशा में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' कुछ प्रयास अवश्य कर रही है और स्वर्गीय बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी के तत्वावधान में प्रतिष्ठित 'देव नागर' पत्रिका एक प्रशंसनीय उद्यम है । यह हर्ष का विषय है कि हमारे जबलपुर से श्री ओंकार ठाकुर के द्वारा सम्पादित 'शताब्दी' में 'अन्तर्भारती' स्तम्भ के अन्तर्गत एक अनुवाद योजना प्रारंभ हुई है । १९६३ की 'गन्धदीप' में तथा 'नई कविता' के निराला विशेषांक आदि पत्रिकाओं में उड़िया तथा हिन्दी साहित्य में सम्पर्क-स्थापना की प्रचेष्टा दीख पड़ती है । किन्तु सृजन के साथ-साथ अनुवाद तथा आदान-प्रदान का कार्य कितना महत्वपूर्ण है, इसको सम्यक् रूप से उड़िया साहित्यकार हृदयंगम करेंगे, ऐसा मैं विश्वास करता हूँ ।

●

—अहिन्दी भाषी श्री दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का आह्वान किया । श्री केशवचन्द्र सेन (बंगला भाषा के प्रखर विद्वान) ने समर्थन किया । आगे चलकर महात्मा गाँधी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाया ।

—क्या अँग्रेजी विश्व भाषा है ? इस अभागे हिन्दुस्थान को छोड़कर और कौन राष्ट्र है जो अँग्रेजी को विश्व भाषा स्वीकारता है—रूस, चीन, जापान, जर्मनी, फ्रांस, बर्मा आदि अनेक प्रमुख राष्ट्र क्या इसे विश्व भाषा होने की मान्यता देते हैं ?

शिक्षण एवं प्रशासन के माध्यम का प्रश्न

—डॉ० महावीर सरन जैन

यह बड़ी अटपटी एवं लज्जास्पद स्थिति है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के १८ वर्षों के बाद भी हम विदेशी भाषा अँग्रेजी से पीछा नहीं छुटा पाए हैं तथा केन्द्रीय सरकार के सचिवालयों का लगभग सम्पूर्ण कार्य आज भी अँग्रेजी के माध्यम से ही सम्पन्न होता है। इससे भी शर्मनाक बात यह है कि हमारे शासन-तंत्र के नेता एवं अधिकारियों का अँग्रेजी मोह स्वतंत्रता के बाद बढ़ रहा है। हमारे राजनैतिक नेताओं के सोचने के ढंग एवं हमारे सरकारी अधिकारियों के सोचने के ढंग में स्वतंत्रता प्राप्ति-पूर्व जमीन आसमान का अन्तर था। उस समय नेतावर्ग भारतीय लोक की वाणी में बोल रहा था, राष्ट्रीयता की दृष्टि से सोच रहा था जबकि सरकारी अधिकारी इस दृष्टि से सोच रहे थे कि यदि अँग्रेज चले गए तो फिर शेष कुछ नहीं रह जाएगा। भारतीयों में अभी वह सामर्थ्य ही नहीं है कि वे नेतृत्व कर सकें। हमारे नेता स्वतंत्रता-पूर्व अँग्रेजी भाषा को मानसिक गुलामी का चिह्न समझते थे। यह भाग्य की विडम्बना है कि आज उसी दल के नये नेता उस भाषा को शिक्षा एवं प्रशासन के माध्यम से हटाने की इच्छुक जनता को संकीर्ण शब्द से अभिहित करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति-पूर्व जिस शिक्षा-प्रणाली की अवहेलना करते थे, आज उसी को आश्रय दे रहे हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति-पूर्व जिस शासन तंत्र को अँग्रेजों का चारण तथा राष्ट्र की दृष्टि से अकल्याणकारी समझते थे, स्वतंत्रता के बाद उसी शासन-तंत्र का विकास हुआ है। यह सब क्यों हुआ है ? इसका सीधा उत्तर यह है कि स्वतंत्रता के पश्चात राष्ट्र के कर्णधार वस्तुतः सरकारी अफसरों के संकेत पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति अधिक हो गए, अपनी मान्यताओं, धारणाओं एवं मूल्यों के अनुसार सरकारी अफसरों को चलने के लिए बाध्य कर सकने वाले प्रभावशाली नेता कम रह गए। इतना तो सत्य ही है कि स्वतंत्रता के बाद वे यह समझने में असमर्थ रहे कि हमारा शासन-तंत्र अब भी अँग्रेजों के शासन वाली लीक पर ही चल रहा है,

अब भी, "जनतंत्र" एवं "गणतंत्र" में जनता शासन से उतनी ही दूर एवं शासकों की दृष्टि में उतनी ही उपेक्षित है जितनी अंग्रेजों के शासन-काल में थी। इसी का आज यह परिणाम सामने आया है कि प्रजातंत्रात्मक शासन पद्धति में भी शासन तंत्र उस भाषा का प्रयोग करते रहना चाहता है, जिसका एक सबूत भी 'साधारण' किन्तु 'अट्ठानवे प्रतिशत' जनता नहीं समझती है।

अँग्रेजों के शासन-काल से चले आ रहे शासन तंत्र एवं भारत की लोकचेतना के बीच का फासला स्वतंत्रता के बाद घटा नहीं है, बढ़ा ही है। सांस्कृतिक दृष्टि से यह अन्तर अंग्रेजियत तथा भारतीयता के मध्य है तथा आर्थिक दृष्टि से यह अंतर अपने बच्चों को कान्वेंट स्कूलों में भेज सकने की सामर्थ्य रखने एवं न रखने वाले वर्गों के बीच विद्यमान है। 'समर्थ वर्ग' अधिक से अधिक डेढ़ या दो प्रतिशत है जबकि 'असमर्थ' वर्ग भारतीय जनता का अट्ठानवे प्रतिशत है। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है कि प्रजातंत्रात्मक पद्धति में भी अभी तक ९८ प्रतिशत वाले वर्ग को सफलता प्राप्त क्यों नहीं हो सकी है, उसकी आवाज को महत्व क्यों नहीं मिल सका है तथा क्यों डेढ़ प्रतिशत वाला वर्ग ही शासन करता रहा है, सफलता पाता रहा है। इसका एक ही कारण है कि हमारी उच्चतर शिक्षा, लोक-सेवा आयोग की परीक्षाओं एवं सरकारी-प्रशासन का माध्यम अँग्रेजी है। अँग्रेजी माध्यम से शिक्षारम्भ करने वाले कान्वेंट एवं पब्लिक स्कूलों में पढ़ सकने की सामर्थ्य के अभाव में अँग्रेजी न सीख सकने के कारण ९८ प्रतिशत वाले वर्ग के बच्चे बी० ए० में सामान्य अँग्रेजी की अनिवार्यता के कारण फेल होते रहे हैं, शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी होने के कारण उनकी सारी शक्ति 'विषय' ज्ञान की तरफ नहीं अपितु अँग्रेजी भाषा को कंठस्थ करने में लगती रही है, अँग्रेजी में कमजोर होने के कारण सरकारी अफसर बनने से वंचित होते रहे हैं। अँग्रेजी अनभिज्ञ जनता अँग्रेजी माध्यम से चलने वाले शासन कार्यों को पहचानने एवं समझने में असमर्थ है, उसमें दखलन्दाजी करने का तो सवाल ही नहीं उठता। अँग्रेजी के चलते रहने के कारण 'समर्थ वर्ग' के बच्चे अफसर बनते रहते हैं। उनके हाथ में ही शासन है, प्रचार व्यवस्था के साधन उन्हें सुलभ हैं। इन्हीं कारणों से यह वर्ग ९८ प्रतिशत वाले वर्ग को परस्पर लड़ाने-भिड़ाने में सफलता पाता रहा है, सच्चे संघर्ष की तस्वीर पर पर्दा डालकर उसे दूसरे रूप में चित्रित करने में समर्थ रहा है। अँग्रेजी बदस्तूर

रहे, इस कारण यह वर्ग अँग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं के बीच के संघर्ष को हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के संघर्ष के रूप में चित्रित करता रहा हैं। अँग्रेजी बने रहने के कारण भारतीय भाषाएँ प्रगति नहीं कर पा रही है किंतु यह वर्ग प्रचारित करता रहा है कि अँग्रेजी के हटने से हिंदी का साम्राज्यवाद स्थापित हो जायगा। मद्रास में यदि अँग्रेजी हटती है तो वहाँ तमिल स्थापित होगी, पश्चिम बंगाल में यदि अँग्रेजी हटती है तो वहाँ के प्रांतीय शासन की भाषा बंगला होगी। ऐसी स्थिति में अँग्रेजी के हटने से हिंदी के साम्राज्यवाद का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? किंतु अँग्रेजी समर्थकों के प्रभावशाली प्रचार का यह परिणाम है कि आज मद्रास की अधिकांश जनता तमिल भाषा के विकास की चिंता नहीं कर पा रही है।

यदि हम चाहते हैं कि उस वर्ग के बच्चे भी हमारे शासन तंत्र के पुर्जे बन सके जो अपने बच्चों को आर्थिक-विपन्नता के कारण कान्वेंट स्कूलों में नहीं पढ़ा पाता, यदि हम यह सोचते हैं कि हमारे विद्यार्थियों का समय एवं उनकी शक्ति ज्ञानार्जन एवं मौलिक अनुसंधान की दिशा में व्यय हो, किसी विदेशी भाषा के विवश एवं अनिवार्य प्रशिक्षण में नहीं, यदि हमारी आस्था 'लोकतंत्र' एवं 'जनतंत्र' में है तो इसका उपाय यही है कि विभिन्न राज्यों का प्रशासन वहाँ की भाषाओं के माध्यम से हो तथा वहाँ के विद्यार्थियों की शिक्षा का माध्यम उन राज्यों की भाषाएँ हों।

यह दिशा भारतीय भाषाओं के विकास की है। हम चाहते हैं कि प्रत्येक भारतीय भाषा अपने सहज अधिकार को प्राप्त करे। अँग्रेजी के हमारे सामान्य प्रशासन एवं शिक्षा के माध्यम रूप में चलते रहने के कारण भारतीय भाषाएं अवरुद्ध एवं कुंठित हो रही हैं, हम इस स्थिति में परिवर्तन चाहते हैं। सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं में भाव एवं पारस्परिक विचारों के ऐक्य की अन्तर्वर्ती धारा प्रवाहित है। भारतीय भाषाओं के विकास एवं सम्बन्ध से हमें भारतीय जीवन पद्धति की एकता का दर्शन हो सकेगा। अँग्रेजी के कारण हम अपने राष्ट्र की आत्मा को पहचानने में असमर्थ रहे हैं। विदेशी भाषा के माध्यम से ज्ञानवान होने के कारण हमें अपने देश के विविध भौगोलिक खण्ड दिखाई दिए हैं। हजारों वर्षों से एक राष्ट्र में रहने वाली जनता के समान भाव स्पन्दन, समान अनुभूतियों, सम्वेदनाएँ, समान विश्वास, परम्परायें और लोकाचार के स्वरूप को पहचानने में हम असमर्थ रहे हैं। जब

अँग्रेजों का भारत में प्रवेश भी नहीं हुआ था, अँग्रेजो का जब उदय भी नहीं हुआ था, तब से भारतीय जनता अपने विश्वासों को एकता की डोरी में पिरोती रही है। गंगा, यमुना, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी नदियाँ भारत के किसी भी भाग में रहने वाले के लिए पवित्र एवं पूजा की वस्तु रही हैं। शंकराचार्य, स्वामी रामानंद, स्वामी वल्लभाचार्य को संपूर्ण भारत ने सुना है। सुदूर मद्रास का नागरिक वाराणसी दर्शन एवं इलाहाबाद के त्रिवेणी स्नान के लिए उत्तर भारत आता रहा है तथा इधर के व्यक्ति कन्याकुमारी के चरणों में अपनी श्रद्धा निवेदित करता रहा है। भारत की प्रत्येक भाषा में देश की सांस्कृतिक परम्पराओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता है। भारतीय भाषाओं में भावाभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों में परस्पर जो एकता है वह देश के खण्ड-खण्ड होने का भ्रम नहीं करती, हजारों वर्षों से चली आ रही भावनात्मक एकता के सहज बोधगम्य होने का सुदृढ़ आधार प्रदान करती है।

केवल भाव एवं विचारों की दृष्टि से ही नहीं, भाषा की संघटना एवं संरचना की दृष्टि से भी आज आधुनिक भारतीय भाषाएँ एक दूसरे के काफी नजदीक आ गयी हैं।

अँग्रेजों ने जब यहाँ का शासन सम्भाला तो उनकी दृष्टि यहाँ की विविधताओं पर अधिक गयी, एकता पर कम। शासन बनाये रखने के ख्याल से उन्होंने 'विभाजन एवं शासन' वाली नीति का अधिकाधिक सहारा लिया। भाषाओं का वर्गीकरण क्षेत्रीय भाषा विज्ञान (Areal Linguistics) के आधार पर न करके पारिवारिक वर्गीकरण के आधार पर किया गया। उस दृष्टि ये यहाँ दो परिवारों की भाषाएँ मुख्य रूप से बोली जाती हैं। १—भारोपीय परिवार, एवं २ – द्रविड़ परिवार।

भारोपीय परिवार की भारतीय नव्यतर आर्य भाषाओं में पंजाबी, सिन्धी, मराठी, उड़िया, बँगला, असमिया, हिंदी, गुजराती, प्रमुख भाषाएँ हैं एवं द्राड़िव परिवार की चार मुख्य भाषाएँ हैं :—तमिल, तेलुगु, मलयालम एवं कन्नड़। आज दोनों परिवारों की भाषाएँ जिस विकास पथ से गुजर रही हैं वहाँ पार्थक्य के बंधन शिथिल होते जा रहे हैं। एक ही राष्ट्र में कई सहस्राब्दियों तक साथ-साथ रहने के कारण भारत की भाषाएँ परस्पर निकट आ गयी हैं। यही कारण है कि यहाँ का कोई विद्यार्थी भारत की ही किसी अन्य भाषा को नहीं सीख सकता। शब्दावली, व्याकरण एवं वाक्य-संरचना

किसी भी दृष्टि से भारतीय भाषायें परस्पर जितनी निकट हैं उतनी अँग्रेजी किसी भारतीय भाषा के निकट नहीं है। हिन्दी भाषी अपने दैनिक जीवन में नारियल, पापड़, कौवा इत्यादि द्रविड़ भाषाओं से आगत शब्दों का प्रयोग करता है। मणिप्रवालम शैली के विकास के कारण दक्षिण की भाषाओं के साहित्य में संस्कृत शब्दों का प्रयोग इतना अधिक होता है कि कभी-कभी सामान्य श्रोता को भाषा के संस्कृत होने का भ्रम हो जाता है। ध्वन्यात्मक स्तर पर भी परस्पर आदान-प्रदान हुआ है। द्रविड़ परिवार की भाषाओं ने भारतीय आर्य भाषाओं को मूर्द्धन्य व्यंजन एवं ह्रस्व "ऍ", "ऒ" स्वर ध्वनियाँ प्रदान की हैं। अधिकांश आधुनिक द्रविड़ भाषाओं ने (तमिल आदि कुछ भाषाओं को छोड़कर) भारतीय आर्य परिवार की भाषाओं की महाप्राण व्यंजन ध्वनियों को आत्मसात किया है। नव्यतर आर्य भाषाओं में परसर्ग, कृदन्तीय रूपों एवं संयुक्त क्रियाओं की योजना आधुनिक द्रविड़ भाषाओं की पद्ग्रामिक प्रणाली के अनुरूप है। आधुनिक द्रविड़ भाषाओं में से कुछ भाषाओं में संश्लिष्ट नकारात्मक क्रिया रूपों का उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा है एव उनमें नकारात्मक अव्यय एवं क्रिया रूपों के अलग-अलग प्रयोग द्वारा नकारात्मक वाक्यों की रचना की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह प्रवृत्ति भारतीय आर्य भाषाओं की पदग्रामिक प्रणाली के अनुरूप है। आधुनिक द्रविड़ भाषाओं में विशेषणों एवं क्रिया विशेषणों की जिस रूप में संरचना की जा रही है तथा उनका जिस प्रकार विकास हो रहा है वह उन्हें आधुनिक आर्य भाषाओं के निकट ला रही है। वाक्य संरचना की दृष्टि से दोनों परिवारों की भाषाओं में साम्य है। इस संबंध में डाक्टर सुनीति कुमार चाटुर्ज्या तक का यह कथन है कि "द्रविड़ परिवार की भाषाओं यथा तमिल अथवा कन्नड़ भाषा का कोई वाक्य साधारणतः बँगला अथवा हिन्दी भाषा का वाक्य बन सकता है। यदि हम उस वाक्य में प्रयुक्त द्रविड़ शब्द रूपों के स्थान पर शब्द क्रम में परिवर्तन किये बिना ही हिन्दी अथवा बंगला भाषा के समानार्थक शब्द रूपों का प्रयोग कर दें। किन्तु इस विधि से फारसी अथवा अँग्रेजी के वाक्यों को नव्यतर आर्य भाषाओं के वाक्यों में रूपायित करना सम्भव नहीं है।"

यदि विभिन्न राज्यों में वहाँ की भाषायें प्रशासन एवं शिक्षा का माध्यम बनती हैं तो भारत की भाषाओं का वास्तविक विकास हो सकेगा, वे एक दूसरे के और अधिक निकट आ सकेंगी। उनमें निहित समान भाव-योजना, समान मूल-शब्द रूपों, संरचनात्मक साम्य की प्रतीति और अधिक

हो सकेगी। जनता अपनी भाषा के माध्यम से अपने देश की भाषा से शासकों से बातें करेगी। शासक उनका उत्तर जन-वाणी में देंगे। अँग्रेजी के कारण साधारण जनता को किस प्रकार मूर्ख बनाया जाता रहा है तथा उसी के बल पर कार्यालयों में जिस प्रकार की लाल फीताशाही पनपती रही है, उसका अन्त होगा।

भारतवर्ष एक बहुभाषी राज्य है। विभिन्न राज्यों में १२ ऐसी भाषाएँ व्यवहृत होती हैं जो शिक्षा एवं प्रशासन का माध्यम बन सकती है।

हिन्दी उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब के आधे भाग एवं दिल्ली प्रशासन क्षेत्र में व्यवहृत होती है। इसके अतिरिक्त पंजाबी 'पंजाब राज्य' के शेष भाग में, असमिया 'आसाम' में, उड़िया उड़ीसा' में, बंगाली 'पश्चिम बंगाल' में, गुजराती 'गुजरात राज्य' में, मराठी 'महाराष्ट्र' में, काश्मीरी 'काश्मीर' में, कन्नड़ 'मैसूर राज्य' में, मलयालम 'केरल राज्य' में, तैलुगु 'आन्ध्र राज्य' में एवं तमिल 'मद्रास राज्य' में व्यवहृत होती हैं।

प्रश्न यह है कि केन्द्रीय सरकार के प्रशासन का माध्यम कौन-सी 'भाषा' बने? प्रत्येक बहु-भाषा राष्ट्र में अंतःप्रान्तीय व्यवहार के रूप में एक 'सार्वदेशीय' या 'सम्पर्क' भाषा की आवश्यकता होती है। 'सम्पर्क भाषा' कोई एक ही भाषा होती है। इसका कारण यह है कि अनेकों में ऐक्य की शृंखला जोड़ने के लिये ही 'सम्पर्क भाषा' की आवश्यकता होती है।

उदाहरण के लिये रूस में लगभग ६० राष्ट्रीय भाषायें हैं। 'सम्पर्क भाषा' के रूप में वहाँ उन ६० भाषाओं में से 'रूसी भाषा' का प्रयोग होता है। यह तो स्पष्ट है कि 'सम्पर्क भाषा' वही होती है जो उस राष्ट्र के बड़े भाग में बोली जाती है तथा जो देश के सभी बड़े नगरों, तीर्थों एवं अन्य ऐसे स्थानों जहाँ देश के प्रत्येक भाग के व्यक्ति आते जाते रहते हैं, प्रयुक्त होती है तथा जिसे सम्पूर्ण राष्ट्र का बहुमत सम्पर्क भाषा बनाने के उपयुक्त समझता है। प्रत्येक बहु-भाषी राष्ट्र में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक अथवा अन्य कारणों से उस राष्ट्र की कोई भाषा देश के समस्त क्षेत्रों की सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित हो जाती है। इसका कारण यह होता है कि जहाँ विभिन्न भाषा-भाषी मिलते हैं वहाँ उन्हें एक ऐसे भाषा माध्यम का प्रयोग करना पड़ता है जिसके माध्यम से वे परस्पर किसी न किसी मात्रा में विचारों का आदान

प्रदान कर सकें, बात-चीत कर सकें। भारत में सदैव से अनेक भाषायें बोली जाती रही हैं। किन्तु फिर भी यहाँ के विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों में परस्पर आवागमन भी होता रहा है।

प्राचीन काल में भारत में सम्पर्क भाषा संस्कृत थी। यह सम्पूर्ण देश में परिभ्रमण करने वाले साधुओं, विचारकों, पर्यटकों एवं व्यापारियों की भाषा थी। इसके पश्चात यह स्थान क्रमशः पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश के किन्हीं रूपों ने लिया। पालि के संबंध में डॉ० बाबूराम सक्सेना ने ठीक ही लिखा है–

'एक जमाने में पालि या उससे मिलती-जुलती भाषा राष्ट्र-भाषा रही होगी, जब अशोक के शिला लेखों की भाषा पढ़ेंगे तो पायेंगे कि स्थान-स्थान पर थोड़ा अन्तर मिलेगा। वह पालि के समकक्ष कोई भाषा रही होगी, इसका प्रमाण यह है कि अशोक ने अपने पुत्र और पुत्री को सिंघल द्वीप भेजा और वहाँ प्रचार किया, वह भाषा पालि भाषा थी।" मुगल काल में राजकीय-कार्य विदेशी भाषा फारसी के माध्यम से सम्पन्न होता था किन्तु उस समय भी जनता के स्तर पर अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा के रूप में उस हिन्दी का विकास हो रहा था जो चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी के संतों की वाणी में मिलती है। धीरे-धीरे इस भाषा का विकास होता गया तथा यह भारतवर्ष के सभी भागों में भिन्न-भाषियों के सम्पर्क की भाषा के रूप में फैलती गयी। हिन्दी के इसी अन्तर्प्रान्तीय-रूप के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने लिखा है—

"गुजराती तथा मराठी बोलने वाली जनता नागरी हिन्दी को भली-भाँति पढ़ एवं समझ लेती है। इसके अतिरिक्त बोलचाल की हिन्दुस्तानी समझने में उसे कोई ख़ास कठिनाई अनुभव नहीं होती। राजपूताना एवं मालवा की जनता ने पिछली शताब्दियों के अपने उच्चकोटि के राजस्थानी पिंगल-साहित्य के रहते हुए नागरी हिन्दी को अपना लिया है। ‥ ···बंगाल, असम एवं उड़ीसा में बोलचाल की हिन्दी का एक सरल रूप सभी लोग समझते हैं। ······द्रविड़ भाषी दक्षिण में भी सबसे अधिक समझ ली जाने वाली भाषा हिन्दुस्तानी ही है, खासकर शहरों एवं बड़े तीर्थ स्थानों में। इसके अतिरिक्त फिजी, ब्रिटिश गायना, त्रिनिदाद, वेस्ट इंडीज, दक्षिणी तथा पूर्वी अफ्रीका, मारिशस, मलय तथा इण्डोनेशिया में हिन्दुस्तानी भाषियों की बस्तियाँ हैं।"

स्वतन्त्रता के पश्चात् संविधान-निर्माताओं ने हिन्दी को उसके सार्वदेशीय स्तर पर व्यवहृत होने एवं राष्ट्रीय परम्पराओं का अभिव्यक्त करने की क्षमता के कारण ही, संविधान में राज भाषा का स्थान दिया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी के सार्वदेशिक रूप की महत्ता एवं स्वरूप-बोध का निर्देश स्वतन्त्रता मिलने के पहले ही अहिन्दी भाषियों द्वारा किया गया था। गुजराती भाषी स्वामी दयानन्द सरस्वती, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, मराठी भाषी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी डाक्टर पाँडुरंग सदाशिव खानखोजे, बंगला भाषी माइकेल मधुसूदन दत्त, राजा राममोहन राय, श्री बँकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, न्यायमूर्ति श्री शारदाचरण, राष्ट्राय महान नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस, श्री केशव चन्द्र सेन, अरविंद घोष तथा द्रविड़ भाषा-भाषी श्री एम० सत्यनारायण, श्री गोपाल स्वामी आयंगर, श्री पट्टाभि सीता रमैया, श्री अनंत शयनम् आयंगर, श्री ए० वी० कृष्णमूर्तिराव इत्यादि अहिन्दी भाषियों ने एक स्वर से हिन्दी के राष्ट्रीय महत्व का वर्णन किया था। इस प्रकार संविधान ने तो कई सौ वर्ष पूर्व से सार्वदेशिक स्तर पर व्यहृत होने वाली हिन्दी भाषा को राज-भाषा के रूप में मान्यता प्रदान कर व्यवहार को संवैधानिक रूप मात्र प्रदान किया है। इस कारण सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी को व्यवहृत करना सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता की भावनाओं को समादृत करना है।

अँग्रेजी के स्थान पर केन्द्रीय सेवाओं में हिन्दी को स्थापित करने के विपक्ष में दो दलीलें दी जाती हैं। एक यह है कि केन्द्राय प्रशासन एवं लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं का माध्यम हिन्दी हो जाने से वे व्यक्ति जिनकी मातृभाषा हिन्दी है अधिक लाभ में रहेंगे और इस प्रकार अन्ततोगत्वा केन्द्र में हिन्दी वालों का साम्राज्य स्थापित हो जायगा। यह तर्क एवं शका निर्मूल भी नहीं है। इस कारण इस सम्बन्ध में हमारे राष्ट्र के कर्णधारों को सोचना चाहिये तथा उन्हें इस प्रकार के कदम उठाने चाहिये जिससे किसा व्यक्ति का भाषा के कारण हानि न उठानी पड़े। इस प्रकार की नीति से अहिन्दी भाषियों की स्वाभाविक आशंका स्वतः समाप्त हो जायगी तथा हिन्दी के विरोध में जो वातावरण तैयार किया जाना है वह न हो सकेगा।

दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि यदि अँग्रेजी हट गई तो भारत अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों एवं ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में पिछड़ जायगा। यह तर्क कहाँ तक संगत है यह विचारणीय प्रश्न है। रूस की राजभाषा एवं सम्पर्क भाषा रूसी है, चीन की चीनी है, जापान की जापानी है। क्या रूस, चीन एवं

जापान इस कारण पिछड़ गये हैं कि उनकी राजभाषा अथवा शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी नहीं है ?

स्थिति यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान विज्ञान से परिचित होने, विदेशों से अपने राजनयिक सम्बन्ध बढ़ाने एवं उनकी कूटनीतियों से परिचित होने के लिये प्रत्येक समुन्नत देश में अनेक विदेशी भाषाओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था होती है। भारतवर्ष में भी अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों से एवं ज्ञान विज्ञान की दृष्टि से अनेक उन्नत एवं समृद्ध भाषाओं को अन्य भाषा के रूप में पढ़ाने की आवश्यकता असंदिग्ध है। यहाँ यह जान लेना चाहिये कि विदेशी भाषाओं में केवल अँग्रजी का ज्ञान प्राप्त करने के कारण ही हम अपेक्षित प्रगति नहीं कर पा रहे हैं। हमारे देश में सभी महत्वपूर्ण भाषाओं को पढ़ाने की व्यवस्था होनी चाहिये। अपने इस आशय को मैं थोड़ा स्पष्ट करना चाहता हूँ। हमारे देश में आज प्रायः उच्चस्तराय कक्षा का छात्र थोड़ी बहुत अँग्रेजी जानता है। अन्य महत्वपूर्ण विदेशी भाषाओं के शिक्षण को महत्व देने का अर्थ यह नहीं है कि भारत का प्रत्येक उच्च कक्षा का छात्र प्रत्येक विदेशी भाषा का विद्वान बने। वस्तुतः यह स्थिति न तो व्यावहारिक ही है और न आवश्यक ही। न तो भारतवर्ष का प्रत्येक छात्र बहुभाषाविद् (Polyglot) ही हो सकता है और न इसकी आवश्यकता ही है। वस्तुतः हमें प्रत्येक विदेशी भाषा का शिक्षण देश के कुछ चुने हुए व्यक्तियों को देना चाहिये। इनकी संख्या आवश्यकतानुसार घट बढ़ सकती है। हमारे पूरे राष्ट्र के नागरिकों में केवल ५० व्यक्ति चाहे जर्मन जानें, किन्तु वे जर्मन पढ़े विद्वान, आजकल अँग्रेजी का अपूर्ण ज्ञान रखने वाले विद्यार्थियों कि भाँति नहीं होने चाहिए, अपितु उनका जर्मन पर इतना अधिकार होना चाहिये कि वे जर्मन में धारावाहिक भाषण दे सकें, जर्मन के साहित्यिक ग्रंथों को समझ सकें तथा स्वयं भी जर्मनी भाषा के माध्यम से ऐसा कार्य कर सकें जिसके मूल्य एवं महत्व को जर्मन भाषा और साहित्य के विद्वान भी एक स्वर से स्वीकार करें। इसी प्रकार प्रत्येक विदेशी भाषा के शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि हमारे देश में अँग्रेजी के एक करोड़ जानकार हों, महत्वपूर्ण यह है कि हमारे देश में अँग्रेजी के कुछ ऐसे विद्वान हों, जिनकी विद्वता की इंगलेंड और अमेरिका भी प्रशंसा करे। किसी विशेष विदेशी भाषा पढ़ने की बाध्यता एवं विवशता कोई भी स्वतंत्र राष्ट्र सहन नहीं करता, साथ ही स्वेच्छा से किसी भी विदेशी भाषा को सीखने की सुविधायें प्रत्येक समुन्नत राष्ट्र की सरकार

जुटाती है। हमारे देश में एक केन्द्रीय स्तर पर अनुवाद विभाग की स्थापना अविलम्ब होनी चाहिये। इस विभाग में प्रत्येक विदेशी भाषा के किसी भी विषय पर प्रकाशित उच्चतर एवं महत्वपूर्ण साहित्य का भारतीय भाषाओं में तत्काल अनुवाद कर सकने की व्यवस्था एवं क्षमता होनी चाहिये। इस प्रकार की योजना से हमारे राष्ट्र के छात्र अपनी मातृभाषा के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान की महानतम उपलब्धियों से अपना सहज सम्पर्क बना सकेंगे। अँग्रेजी पर ही बाध्य न रहने के कारण अँग्रेजी से इतर अन्य विदेशी भाषाओं के साहित्य की उपलब्धियों से भी तत्काल परिचय पा सकेंगे। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की दृष्टि से भी विचार करना महत्वपूर्ण है। भारतवर्ष विश्व की महान शक्तियों में से एक है। जब भारतवर्ष स्वाधीन नहीं था, उस समय इस राष्ट्र का विदेशों से संबंध यहाँ के विजेता-शासकों की भाषा के माध्यम से होता था। स्वतंत्र राष्ट्र भारतवर्ष अब यदि इंगलेंड एवं अमेरिका से अपना कार्य-व्यवहार अँग्रेजी में करता है तब तो यह उचित है. किन्तु यदि हम ऐसे देशों से भी जिनकी भाषा अँग्रेजी नहीं है, अंग्रेजी में ही व्यवहार चालू रखते हैं तो यह सहज संभव है कि इससे उनके आत्माभिमान को चोट पहुँचे। उन राष्ट्रों की हमसे यह अपेक्षा करना स्वाभाविक है कि हम उनसे या तो अपने राष्ट्र की भाषा के माध्यम से अथवा उनके राष्ट्र की राजभाषा के माध्यम से व्यवहार करें। इसका कारण यह है कि यह बड़ी विचित्र बात है कि दो स्वाभिमानी स्वतंत्र राष्ट्र ऐसी भाषा में बातें करें, जो दोनों में से किसी देश की अपनी न हो। हमारे यहाँ से जो भी व्यक्ति विदेश जाता है—भले ही वह राजदूत हो, या भारतीय सांस्कृतिक संघ का सभापति, वह विश्व के प्रत्येक देश में अँग्रेजी बोलकर काम निकालना चाहता है।

कभी-कभी अत्यन्त हास्यास्पद स्थिति उस समय होती है जब विदेश का कोई व्यक्ति हमारे देश के व्यक्ति से किसी भारतीय भाषा में बात करता है तथा भारतवर्ष से गया हुआ व्यक्ति उसकी बात का उत्तर न तो भारत की किसी भाषा में देता है, न उस देश की भाषा में देता है, प्रत्युत एक तीसरे देश की भाषा—अँग्रेजी में देता है। इस अस्वाभाविक एवं कृत्रिम स्थिति तथा उससे उत्पन्न अवांछनीय परिणामों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होना चाहिये। यह एक सर्वमान्य सत्य है कि दूसरे देश की जनता की भावनाओं से परिचित होने के लिये, उनके अत्यधिक निकट आने के लिये, उस राष्ट्र की कूटनीतियों को स्पष्ट रूप से समझने के लिए परराष्ट्र में कम से कम

राजदूत एवं दूतावास के प्रत्येक कर्मचारी को उस देश की राजभाषा से पूर्णतया परिचित होना चाहिए। दूतावास का कोई व्यक्ति उस देश की जनता में जहाँ कहीं भाषण दे, वह उस देश की जनता की ही भाषा में हो। राजदूत में यह योग्यता विशेष रूप से होनी चाहिये कि वह उस देश की राजभाषा से पूर्ण-तया परिचित हो, उस भाषा को बोलने की इतनी क्षमता रखता हो कि उस देश में आयोजित किसी भी प्रकार के सांस्कृतिक सम्मेलन या विचारगोष्ठी में उसी देश की भाषा में धारावाहिक एवं प्रभावशाली भाषण दे सके तथा उस देश के सभी राजनयिकों की भाषा को समझ सके।

जब रूस से कोई सांस्कृतिक दल भारतवर्ष आता है, तो उस दल के व्यक्ति यहाँ आकर प्रायः शुद्ध हिन्दी में भाषण देते हैं तथा बातें करते हैं। उनके मुख से जब हम अपने देश की भाषा सुनते हैं तो अनायास ही हमारा हृदय उनके निकट चला जाता है। हमारे देश का जब कोई सांस्कृतिक मंडल वहाँ जाता है, तो उनकी यह अपेक्षा युक्तिसंगत एवं स्वाभाविक ही है कि यहाँ के व्यक्ति उनसे उनकी भाषा में ही बातें करें। हम अँग्रेजी बोलकर रूस को जनता के निकट नहीं पहुँच सकते हैं तथा चीनी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त किये बिना, चीन में स्थित हमारे दूतावास के व्यक्ति, चीन की कूटनीतियों से भली भाँति परिचित नहीं हो सकते हैं। इस कारण हमारे यहाँ सभी महत्वपूर्ण विदेशी भाषाओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये, केवल अँग्रेजी को ही नहीं।

●

"राजा अब अँग्रेज नहीं अँग्रेजी रानी,
करती उससे अधिक यही अपनी मनमानी।"

— स्व० मैथलीशरण गुप्त

सम्मेलन में पारित प्रस्ताव

सर्वप्रथम मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन के इस तृतीय अधिवेशन में प्रदेश और देश को मूर्धन्य साहित्यिक दिवगंत आत्माओं को श्रद्धांजलि अर्पित की गई। सम्मेलन के अध्यक्ष पं० द्वारकाप्रसाद मिश्रजी द्वारा प्रस्तुत शोक प्रस्ताव में व्यक्त किया गया, "भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री मैथिली शरण गुप्त, महापंडित राहुल साँकृत्यायन, श्री सियारामशरण गुप्त, श्री गजानन माधव मुक्तिबोध, डॉ० गुलाबराय, श्री गोपालसिंह नेपाली, श्री जगमोहनदास, ठाकुर शिशुपालसिंह, मामा वरेरकर, पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, भाषा-विद डॉ० रघुवीर, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्री चतुरसेन शास्त्री, सरदार सा० किवे, ठाकुर गोपाल शरण सिंह, आचार्य शिवपूजन सहाय, श्री विपिन जोशी, के निधन पर सम्मेलन अपना हार्दिक शोक प्रकट करता है। राष्ट्र और हिंदी भाषा के इन उन्नायकों ने गत अर्धशताब्दी में भारत राष्ट्र के जागरण एवं निर्माण में तथा हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि में अमूल्य योगदान दिया है। ये हमारी प्रेरणा और हिंदी साहित्य के विकास-क्रम के स्रोत रहे हैं। इस अवसर पर यह सम्मेलन इन दिवगंत आत्माओं के प्रति अपनी सादर श्रद्धांजलि अर्पित करता है।"

प्रस्ताव क्रमांक—२

प्रस्तावक—श्री महेन्द्रकुमार 'मानव'

समर्थक —श्री व्यौहार राजेन्द्रसिंह

'शासन ने प्रदेश में तीन अकादमियाँ बनाने का निश्चय किया है। सम्मेलन उनका स्वागत करता है और प्रस्ताव करता है कि तीनों अकादमियों को गठित करने के लिये तथा उसका विधान आदि बनाने के लिये शासन द्वारा एक तदर्थ समिति का गठन किया जावे जिसमें मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन का भी प्रतिनिधित्व रहे।'

प्रस्ताव क्रमांक—३

प्रस्तावक—आचार्य गुरुप्रसाद टंडन
समर्थक —डॉ० कोमलसिंह सोलंकी

'यह सम्मेलन केन्द्रीय शासन से अनुरोध करता है कि संघीय लोक सेवा आयोग की प्रतियोगिता परीक्षाओं में राष्ट्र भाषा हिंदी को शीघ्रातिशीघ्र अनिवार्य विषय के रूप में स्थान देकर जनभावना की पूर्ति करे और उसे माध्यम बनाने का प्रयत्न करे।'

प्रस्ताव क्रमांक—४

प्रस्तावक—श्री व्यौहार राजेन्द्रसिंह
समर्थक —श्री महेन्द्रकुमार 'मानव'

'यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि राष्ट्र भाषा की प्रगति के लिये 'सामान्य हिंदी' को मध्यप्रदेश के प्रत्येक विश्वविद्यालय की स्नातक कक्षाओं में अनिवार्य विषय रखा जावे।'

प्रस्ताव क्रमांक—५

प्रस्तावक—डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र
समर्थक —श्री केदारनाथ झा 'चंद्र'

'यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि मध्यप्रदेश के साहित्यकारों और प्रकाशकों के समुचित प्रोत्साहन के लिये शासन से अनुरोध किया जाये कि वह एक परामर्श-दात्री समिति का गठन करे जिसकी सिफारिश पर पुस्तकें शासन द्वारा क्रय की जाया करें तथा शैक्षणिक संस्थाओं को आदेश दिये जावें कि अपने पुस्तकालयों अथवा पुरस्कार वितरण हेतु उन्हें जो पुस्तकें खरीदनी पड़ती हैं उस व्यवस्था में इन पुस्तकों को प्राथमिकता दी जावे।'

प्रस्ताव क्रमांक—६

प्रस्तावक—श्री जुगुल बिहारी अग्निहोत्री
समर्थक —श्री सत्यनारायण श्रीवास्तव

'मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का यह अधिवेशन म० प्र० शासन से अनुरोध करता है कि मध्यप्रदेश में हिन्दी के राज्यभाषा घोषित हो जाने के बाद हिन्दी-पत्रों को वरिष्ठता एवं मान्यता प्रदान की जावे।'

प्रस्ताव क्रमांक—७

प्रस्तावक—श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित
समर्थक —श्री जुगुल बिहारी अग्निहोत्री

'यह सम्मेलन शासन से अनुरोध करता है कि सभी प्रकार के विज्ञापन शासन या शासन से सम्बन्धित संस्थायें तथा लोक-सेवा आयोग, मध्यप्रदेश विद्युत प्रमण्डल, रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन आदि हिन्दी भाषा में ही भेजें चाहे वह किन्हीं भाषा के पत्रों को भेजे जावें।'

प्रस्ताव क्रमांक—८

प्रस्तावक—श्री प्यारेलाल गुप्त
समर्थक —श्री गौरीशंकर द्विवेदी
डॉ० भगवतीप्रसाद शुक्ल

'यह सम्मेलन मध्यप्रदेश के विश्वविद्यालयों एवं साहित्यिक संस्थाओं से अनुरोध करता है कि अपने क्षेत्र की जनबोलियों के अध्ययन तथा उनके साहित्य के संकलन के लिये प्रयत्नशील हों।'

प्रस्ताव क्रमांक—९

प्रस्तावक—श्री विष्णुदत्त अग्निहोत्री
समर्थक —श्री शिवकुमार साहर
श्री शिवसेवक तिवारी

'मध्यप्रदेश के जिन जिलों में म० प्र० हि० सा० सम्मेलन की शाखाएँ नहीं हैं उन जिलों में उनका गठन किया जावे व इस कार्य के लिये एक वैतनिक संगठक की नियुक्ति की जावे।'

प्रस्ताव क्रमांक—१०

प्रस्तावक—श्री व्यौहार राजेन्द्रसिंह
समर्थक —श्री गजानन शर्मा
श्री झुन्नीलाल वर्मा

'मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन यह प्रस्ताव करता है कि अखिल भारतीय भाषाओं को देवनागरी लिपि में लिखने का जो निर्णय कुछ समय पूर्व प्रदेशों के मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में लिया गया, उसका स्वागत करता है

परन्तु इस बात पर खेद प्रकट करता है कि इस निर्णय का अभी तक क्रियान्वयन नहीं किया गया। केन्द्रीय शासन व प्रदेश से अनुरोध है कि इस ओर शीघ्र कार्यवाही की जावे जिससे विभिन्न भाषाओं के सीखने में सुविधा हो व राष्ट्रीय एकता में वृद्धि हो।'

प्रस्ताव क्रमांक—११

प्रस्तावक—श्री महेन्द्रकुमार 'मानव'

समर्थक —श्री नत्थूलाल सराफ

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन यह प्रस्ताव करता है कि सम्मेलन के विधान में उचित संशोधन का सुझाव देने के लिये निम्न व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त की जावे—

१. डॉ० कोमलसिंह सोलंकी

२. डॉ० भवानीप्रसाद तिवारी

३. डॉ० भगवतीप्रसाद शुक्ल

●

—विश्व के मुस्लिम राष्ट्रों में हिन्दी की ही एक शैली एवं बोलचाल की सुलभ भाषा उर्दू को अँग्रेजी से अपेक्षाकृत अधिक मान्यता प्राप्त है।

—अँग्रेजों के लिये अँग्रेजी भाषा स्वतन्त्र और मुक्त जाति की भाषा है मगर भारतीयों के लिये यह गुलामी की स्वीकृति है, मानसिक दासता की बोधक है और इसीलिये स्वतन्त्र भारत की स्वतंत्र भाषा हिन्दी ही हो सकती है।

सांस्कृतिक कार्यक्रम

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन में साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अभिनव संयोजन से अधिवेशन में अधिक रोचकता, प्रेरणा और व्यापकता लाने का प्रयत्न किया गया। इस दिशा में प्रदेश का प्रकाशित पुस्तकों एवं पाण्डुलिपियों की प्रदर्शनी, कला-प्रदर्शनी, कवि-सम्मेलन तथा कृष्णायन नृत्यनाट्य का आयोजन विशेष उल्लेखनीय है।

रंगमंच पर 'कृष्णायन'

अधिवेशन के अवसर पर एक विशिष्ट सांस्कृतिक कार्यक्रम था 'कृष्णायन' महाकाव्य का नृत्यनाट्य के रूप में रंगमंच पर प्रदर्शन। इसे जबलपुर के गृहविज्ञान महिला महाविद्यालय की छात्राओं ने प्रस्तुत किया था। संयोजिका थीं—प्राचार्या श्रीमती कुसुम मेहता और नृत्य-निर्देशक थे—श्री नरसप्पा अल्वा।

नव वर्ष के प्रथम मास में ही इतना सुन्दर आयोजन हुआ यह भी संयोग ही है और सबको हर्ष इस विषय का था कि 'कृष्णायन' के कवि श्री द्वारकाप्रसाद जी मिश्र भी इस अवसर पर उपस्थित थे। 'कृष्णायन' सात काण्डों में विभक्त नौ सौ से अधिक पृष्ठों का दीर्घाकारी काव्य है और उसे नृत्यनाटय के रूप में प्रस्तुत करना स्वयं में साहस का कार्य है। जिन प्रतिभाओं ने इसका आरम्भिक प्रारूप तैयार किया होगा, उन्होंने सर्वप्रथम काव्य की नाटकीय संभावनाओं पर सूक्ष्म दृष्टि डाली होगी। उन्हें संग्रथन का कार्य इस प्रकार सम्पादित करना पड़ा होगा कि काव्य की मूल निष्पत्तियों में अन्तर न आने पाए। सन्तोष है कि नृत्यनाट्य मूल काव्य से अधिक दूर नहीं गया।

मूल नाट्य आरम्भ होने के पूर्व इसमें बंदी कवि मिश्र का एक दृश्य प्रस्तुत किया गया। वे लौह-पिंजर में बन्दी कृष्ण के व्यक्तित्व पर विचार करते हैं। बहुरंगी कृष्ण के वात्सल्य, शृंगार, वीर तीनों स्वरूपों पर उनकी दृष्टि जाती है। कारागृह में कवि को कृष्ण के चरित्र ने ही सर्वाधिक प्रेरणा

क्यों दी इस विषय में 'कृष्णायन' के सोरठा की प्रथम पंक्ति में ही कहा गया है :—

> जन्मेउ बन्दी-धाम, जो जन जननी मुक्ति हित
> बंदउ सोई घनश्याम, मैं बन्दी बन्दिनि-तनय ।

कवि कारागृह में हैं और कृष्ण का जन्म भी कारावास में ही हुआ था। जैसे कृष्ण की माता देवकी बंदिनी थीं, वैसे ही कवि की भारतमाता परतंत्र है। स्पष्ट है कि कवि ने कृष्ण के व्यक्तित्व को 'मुक्ति के सूत्रधार' रूप में देखा है लगभग गाँधी के समीप।

मुख्य नाट्यभाव का आरंभ कृष्ण जन्म के दृश्य से हुआ, जिसमें कारा-वास की भूमिका थी। देवकी, वासुदेव नवजात शिशु के लिए वात्सल्य भाव में विनोद है, पर साथ ही वे चिंतित भी हैं कि इसकी रक्षा किस प्रकार हो। दोनों का उपासनाभाव ईश्वर को पुकारता है। विष्णु दर्शन देते हैं और कारा के द्वार खुल जाते हैं। आन्दोलित यमुना का दृश्य आगे चलकर संक्षिप्त है। दूसरा दृश्य माखनचोरी का था, जिसमें ग्वालबाल अपनी क्षुधा-तृप्ति के लिए

राधा-कृष्ण

कृष्ण से निवेदन करते हैं। उधर गोपिकाएँ दधि-माखन तैयार करके चली जाती हैं और कृष्ण को अवसर मिल जाता है।

फिर कृष्ण के रसिक स्वरूप का चित्रण होता है। आरम्भिक दृश्य राधाकृष्ण के पूर्वानुराग का है, जिसमें राधा लज्जाशील हैं पर कृष्ण निर्भीक। आगामी चौथा दृश्य पृष्ठभूमि में प्रवाहित यमुना के कूल-कछारों पर चित्रित रासलीला का है। गोप-गोपिकाओं और राधा-कृष्ण के नृत्य में पूर्ण गति का उपयोग किया गया है। धीरे-धीरे नृत्य चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ता है और नेपथ्य से आते हुए वंशी और संगीत के स्वर समस्त वातावरण को एक तन्मयता प्रदान करते हैं। पाँचवा दृश्य यशोदा के वात्सल्य की व्यंजना के लिए हुआ है। माँ चिन्तित हैं कि इतना विलंब हो गया और मेरा कान्हा अब तक लौटकर नहीं आया। यशोदा के मुख पर विषाद की रेखाएँ हैं, वे निभ्रांत उद्विग्न और व्याकुल हैं। गोपिकाओं के साथ खोजते हुए जब यमुना-तट पर पहुँचती हैं तो देखती हैं कि कृष्ण कालियानाग का वध कर प्रसन्न मुद्रा में खड़े हैं। माँ स्तब्ध रह जाती हैं, शब्द नहीं फूटते। बालक से आश्वासन माँगती हैं
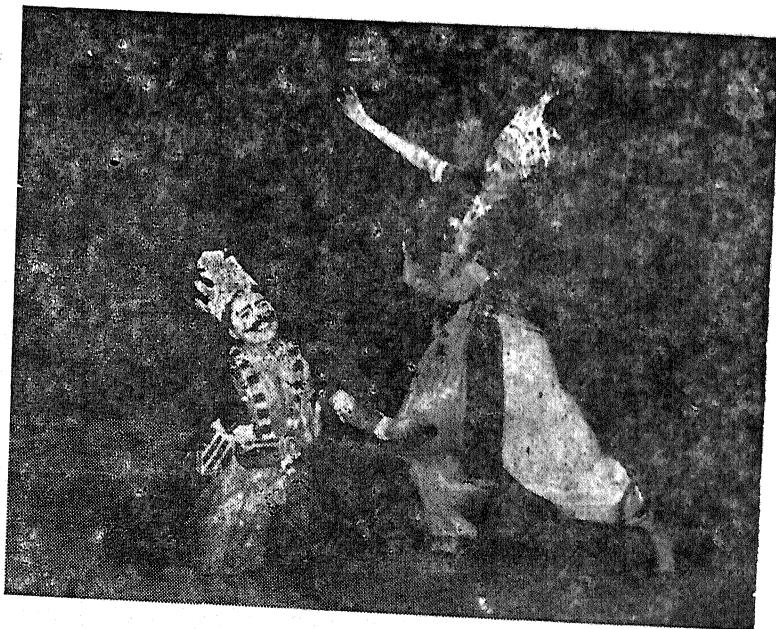
आरिष्ठासुर-वध

कि फिर वह अकेले कभी न जायगा। इस दृश्य में यशोदा का अभिनय वात्सल्य को रसदशा तक पहुँचाने में समर्थ हुआ है। इसके बाद के तीन-चार दृश्यों में कृष्ण के वीरोचित कार्यों का चित्रण था जिसमें रौद्र, वीर भावों की प्रधानता थी। कृष्ण असुरवध करते हैं। कंस से उनका संघर्ष होता है जिसमें वे विजयी होते हैं। वे वासुदेव देवकी को मुक्त करते हैं और देवकी की इस मुक्ति के दृश्य में एक प्रतीकात्मक व्यंजना भी कवि ने नियोजित की है। देवकी की भाँति भारत माता भी किसी दिन मुक्त होगी, कवि यह स्वप्न देखता है। पृष्ठभूमि के पट पर भारतमाता का चित्र है जिसमें शृंखलाएँ एक-एक कर टूटती हैं। यह राष्ट्रीय भावना की सफल नियोजना है और कवि की चेतना में जो राष्ट्रीय आन्दोलन पूर्णतया व्याप्त रहा है उसे प्रकट करने में यह दृश्य सफल रहा है।

रुक्मिणी-हरण का दृश्य लगभग नवाँ था। यहाँ कृष्ण अधिक वयस्क हो जाते हैं और निर्देशक ने कुशलता से उनकी भूमिका में परिवर्तन कर दिया है। इस दृश्य का प्रारंभ रौद्रभाव से होता है किन्तु उसका समापन कृष्ण-रुक्मिणी के रागात्मक मिलन से होता है। भावातिशयता के क्षण जन्म लेते हैं। दोनों अभिभूत हो जाते हैं। नृत्य, संगीत की लय-गति बहुत तीव्र हो जाती है। एक रागात्मक वातावरण की सृष्टि होती है। द्रौपदी स्वयंवर के दृश्य में रंगमंच राजाओं से भरा हुआ है, जिनमें से कुछ पात्र हास्य का आलंबन भी बनते हैं। दर्शकों का मनोरंजन होता है। क्षण-क्षण में द्रौपदी भावांदोलित होती है कि वह जयमाला किसे समर्पित करेगी ? अर्जुन लक्ष्य-भेद के पूर्व कृष्ण को प्रणाम करता है और वीरोचित नृत्य में लीन हो जाता है। लक्ष्यभेद होते ही वातावरण में शृंगार तैर जाता है। ग्यारहवें दृश्य में जुए में पराजित पांडवों का चित्र है। दुर्योधन धर्मराज से द्रौपदी को भी जीत लेता है और दुःशासन उस सभा में द्रौपदी को नग्न करना चाहता है। पांडव विवश हैं, केवल भीम का ही दर्प विद्रोह करता है। इस दृश्य में द्रौपदी का अभिनय अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचता है। बिना स्वर, अक्षर का आश्रय लिए हुए वह किस करुण दृश्य की योजना करती है, उसे समस्त भावनाट्य का सर्वोत्तम क्षण भी कहा जा सकता है। दर्शकों की आँखें गीली हुई थीं, ऐसा मेरा अनुमान है। और जब भगवान कृष्ण उसकी सहायता करते हैं तब द्रौपदी का करुण भाव रौद्र में परिवर्तित होता है। वह चण्डी की भाँति नृत्य करती है कि उसकी वेणी तब तक खुली रहेगी जब तक वह दस्युओं के रक्त में इनका प्रक्षालन न कर लेगी।

इसके अनंतर महाभारत की सांकेतिक सूचना मिलती है। बारहवें दृश्य में कृष्ण कौरवों के समक्ष शांति का प्रस्ताव लेकर जाते हैं। धृतराष्ट्र महाभारत के विरुद्ध हैं पर स्वयं को अपने पुत्रों के समक्ष विवश पाते हैं। भीष्म भी शांति का समर्थन करते हैं, पर अहंकारी दुर्योधन कृष्ण को ही बंदी करना चाहता है, किन्तु यहाँ तो चारों ओर कृष्ण ही कृष्ण है। तेरहवें दृश्य से महाभारत का आरंभ होता है—शंखनाद से। पराजित अर्जुन को

गीता-काण्ड

कर्महि महँ अधिकार तुम्हारा, नाहि कर्म-फल पँ अधिकारा।

कृष्ण गीता का उपदेश देते हैं, जिसके माध्यम से कवि ने राष्ट्रीय कर्त्तव्यों पर विचार किया है। वहाँ पार्थ स्वतंत्रता का बलिपंथी है। एक आश्चर्य यह है कि कृष्ण केवल अपने अभिनय से ही गीता के मूल उपदेश अर्जुन को बताते हैं। कभी-कभी 'कृष्णायन' की पंक्तियाँ अवश्य नेपथ्य से तैरती हुई आती हैं। दर्शक यहाँ एकरसता का अनुभव करने लगे थे, पर यह तो काव्य क-वैचारिक का बौद्धि आधार है। अंत में अर्जुन का हृदय परिवर्तन होता है।

कर्मयोग की विजय होती है। उदासी उल्लास में परिवर्तित हो जाती है। इस दृश्य में एक सुन्दर योजना भी की गई थी कि जब कृष्ण अर्जुन को अपने विराट रूप का दर्शन कराते हैं तब पहले सहसा अंधकार छा जाता है। कृष्ण अन्तर्ध्यान हो जाते हैं, पीछे का पट हट जाता है और एक प्रकाशमान विष्णु प्रतिमा उपस्थित होती है। फिर कृष्ण तत्काल उसी रीति से लौट आते हैं। चौदहवें, पंद्रहवें दृश्य युद्ध के हैं। पहले अर्जुन, भीष्म का संघर्ष होता है जिसमें कृष्ण का शस्त्रहीन रहने का व्रत संकट में पड़ जाता है। अर्जुन के लिए भी यह कठिन परीक्षा का अवसर है – पितामह पर आक्रमण। ममता और कर्त्तव्य में उसका कर्त्तव्य विजयी होता है। फिर महाभारत का अंतिम युद्ध है जिसमें भीम दुर्योधन को पराजित करते हैं। यहाँ दुर्योधन पराभूत और शिथिल हैं।

सोलहवाँ दृश्य अंतिम है—करुण और उदास। धृतराष्ट्र, संजय हैं और पीछे गान्धारी हैं, नेत्रों पर पट्टिका बँधी है। वे इन नेत्रों से अपने पुत्रों के शव नहीं देख सकतीं। उधर रणभूमि में चारों ओर शव ही शव हैं। गांधारी करुणा से चीत्कार उठती है, कृष्ण को धिक्कारती हैं। कहती हैं—कृष्ण, तुम चाहते तो युद्ध न होता। वे शाप देती हैं कि कृष्ण, तुम्हारे भी यदुवंश का इसी प्रकार विनाश होगा। तुम परमेश्वर होकर भी पशु के समान मारे जाओगे। और तभी कृष्ण का वंशी स्वर लहराता है। वे क्षमा-याचना करते हुए कहते हैं—माँ, मैं तुम्हारा ही पुत्र हूँ। तुम स्वयं को पुत्रहीन न कहो। तुम्हें कैसे बताऊँ कि अर्जुन का सब पाप योगक्षेम द्वारा मैंने ही ग्रहण किया। और जब पृष्ठभूमि से ये स्वर उच्चरित हो रहे थे कि अठारह दिन तक मेरी ही मृत्यु हुई है, हर सैनिक के साथ मैं मरा हूँ, यदि मैं जन्म हूँ तो मृत्यु भी मैं ही हूँ, तो मुझे सहसा "अंधायुग" की पंक्तियाँ यदि हो आईं—"हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं···।" और कृष्ण के ये शब्द सुनकर गांधारी पश्चाताप में डूब जाती हैं। भावनाट्य का समापन करुण वातावरण से होता है।

पात्रों ने "कृष्णायन" काव्य के भावों को सर्वप्रथम हृदयंगम किया होगा तभी वे उन भावों को अभिनय द्वारा व्यंजित कर सके। वास्तव में तो ये पात्र मुद्राओं, इंगितों, संकेतों और चरणों की गति द्वारा ही समस्त भावों का प्रकाशन करते थे। नाट्य यहाँ प्रधान था। पात्र इतने नृत्यकुशल थे कि उनमें अंतिम समय तक शैथिल्य नहीं आने पाया। गोप-गोपिकाओं के सहनृत्य

में कहीं-कहीं समभाव नहीं आने पाता था, पर थोड़े अतिरिक्त में अभ्यास से इस अभाव की पूर्ति हो सकती है। कृष्णायनकार की मुख्य दृष्टि राष्ट्रीय और सांस्कृतिक है और कुशल निर्देशक का ध्यान सदैव इस तथ्य की ओर रहा है। कई दृश्यों में उसने कवि के इस आशय को प्रमुखता दी है, जैसे वासुदेव-देवकी-मुक्ति के प्रसंग में। गीता-संदेश में भी आध्यात्मिकता के स्थान पर राष्ट्रीय दायित्व का आग्रह अधिक व्यंजित किया गया। प्रायः सुविधा के लिए नाट्य रूपान्तर करते हुए काव्य का निषेध भी कर दिया जाता है, पर यहाँ काव्य की मूल आत्मा सुरक्षित ही नहीं रही, वरन् वह और भी स्पष्ट होकर प्रकट हुई। नैपथ्य से संगीत का स्वर, कृष्णायन' की पंक्तियाँ वातावरण के निर्माण में पूर्ण सहायक थीं। इस प्रसंग में सराहना होगा उस व्यक्ति को जिसने काव्य के सार्थक और महत्वपूर्ण उद्धरणों का संचयन किया। बुंदेलखंडी क्षेत्र की बालिकाओं द्वारा अवधी का इतना शुद्ध उच्चारण भी प्रशंसनीय है। एक अन्य आश्चर्य यह है कि इस अभिनय में अहिंदी भाषा प्रांतों की कई बालिकाओं ने भी भाग लिया। उन्होंने काव्य के भाव निश्चित ही ग्रहण किए होंगे और यह सराहनीय है। यों तो सभी पात्रों का अभिनय उच्चकोटि का था, पर द्रौपदी, कृष्ण, राधा, यशोदा विशेष उल्लेखनीय हैं। कोई भी पात्र स्थावर-जड़ नहीं था, सभी साभिनय थे।

पात्रों की वेशभूषा सांस्कृतिक परिवेश के अनुकूल थी और प्रशंसा करनी होगी कि पात्र इतनी शीघ्रता से दूसरे वेश में उपस्थित हो जाते थे कि दर्शकों को आगामी दृश्य के लिए अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। एक बालिका ने लगभग सभी खलनायकों का अभिनय किया और उसमें सफलता प्राप्त की। दृश्यविधान सहज, स्वाभाविक थे और उन्हें अतिरिक्त अलंकरण से बोझिल नहीं कर दिया गया था। मेरा विचार है कि खुले रंगमंच पर इस भावनाट्य की संभावनाएँ और भी उजागर हो सकती हैं क्योंकि वहीं वातावरण अधिक स्वाभाविक बन सकेगा। शिल्प की दिशा में और भी सुधार किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए रुक्मिणी कृष्ण के रागात्मक मिलन के अवसर पर प्रकाश बहुत तेज था, जबकि उसे किंचित धूमिल होना चाहिए था—श्रृंगार के पूर्ण परिपाक के लिए। इसी प्रकार जब कृष्ण एक कोण पर द्रौपदी की रक्षा के लिए जाते हैं तब समस्त प्रकाश उन्हीं पर पड़ना चाहिए था। पर कुल-मिलकर 'कृष्णायन' का भावनाट्य के रूप में रंगमंच पर प्रदर्शन जबलपुर के गृह विज्ञान महाविद्यालय की एक उपलब्धि कही जायगी, जो

संगीत, नृत्य, अभिनय की दृष्टि से उच्चकोटि का था। मैंने लगभग बारह-चौदह वर्ष पूर्व संगीतमार्तण्ड स्व० पं० ओंकारनाथ जी ठाकुर द्वारा निर्देशित 'कामायनी' का भावनाट्य काशी विश्वविद्यालय में देखा था। कलकत्ता की 'अनामिका' द्वारा ही ऐसा प्रयत्न हुआ था। 'कृष्णायन' भावनाट्य उसी परंपरा में आएगा। स्वयं कवि श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र ने प्रदर्शन के अंत में उसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि 'कृष्णायन तो जैसा-जैसा लिखा गया है, पर इस अभिनय ने उसमें चार चाँद लगा दिए हैं।' संयोगवश मैं कवि के पीछे ही उपस्थित था और एक-दो अवसरों पर मैंने अपनी शंकाएँ भी उनके समक्ष प्रस्तुत कीं जिनका उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक समाधान किया। द्रौपदी स्वयंवर की प्रेरणा के विषय में उन्होंने बताया कि इन्दुमती स्वयंवर उनके समक्ष रहा है। इसी प्रकार एक बार रंगमंच पर अतिरिक्त प्रकाश की ओर उन्होंने संकेत किया था।

लगभग तीन घंटे से भी अधिक के बाद जब दर्शक उठे तो वे एक स्वर से भावनाट्य को सराह रहे थे। **प्रस्तुतकर्त्ता : डॉ० प्रेमशंकर**

पुस्तक प्रदर्शनी

इस अधिवेशन के अवसर पर आयोजित पुस्तक प्रदर्शनी में प्रदेश के साहित्यकारों के प्राचीन और वर्तमान के प्रकाशित ग्रंथों, दुर्लभ ग्रंथों और पाण्डुलिपियों का प्रदर्शन किया गया जिसमें प्रदेश के प्रसिद्ध प्रकाशकों और साहित्यकारों का योगदान प्रशंसनीय रहा। इस प्रदर्शनी में लगभग पाँच सौ विशेष महत्वपूर्ण ग्रंथों को प्रदर्शित किया गया जिनमें पाण्डुलिपियाँ भी थीं। कुछ पाण्डुलिपियों के प्राप्त करने का श्रेय श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह को है जिनने अपने निजी पुस्तकालय से पाण्डुलिपियाँ प्रदान की।

पुस्तकों की प्रदर्शन-सज्जा में विशेषता यह रही कि प्रत्येक पुस्तक अपनी ओर दर्शक का ध्यान खींच लेती थी। इस प्रदर्शन को अभिनव रूप देने का श्रेय नगर के कलाकारों और साधन जुटाने का श्रेय स्थानीय विद्यालयों को है जिनके सहयोग से यह सम्भव हो सका। पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन के इतिहास में दूसरी बार किया गया। इस प्रकार का आयोजन सन् १९२१ के सागर अधिवेशन में किया गया था। पुस्तक प्रदर्शनी की सफलता का श्रेय प्रो० हनुमान वर्मा और श्री सौभाग्यमल जैन को है।

कला-प्रदर्शनी

नगर में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, तृतीय अधिवेशन के सुअवसर पर जबलपुर आर्ट सोसायटी द्वारा प्रथम बार किसी कला-प्रदर्शनी का सफल आयोजन हुआ जिसका उद्‌घाटन डॉ० रघुवीरसिंह के कर-कमलों द्वारा दिनांक २० जनवरी को मध्यान्त में स्थानीय होम साइंस कालेज के सभा-कक्ष में सम्पन्न हुआ।

नगर के चित्रकारों के बीच महाराजकुमार डॉ० रघुवीरसिंह

(बाएँ से)—सर्वश्री हरिशंकर दुबे, विजय ठाकुर, सुधाकर सोनवलकर, रवीन्द्र परांडेकर, हरिकुमार श्रीवास्तव, एम० पी० मिश्र, डॉ. रघुवीरसिंह,(बैठे हुए) कामता सागर, विष्णु चौरसिया, कैलाश नारद, व्यौहार राममनोहर सिन्हा, लालजी अग्रवाल।

कला-प्रदर्शनी में प्रदेश के इकत्तीस कलाकारों की १०३ कलाकृतियों में से ६२ कृतियों को प्रदर्शनी में समाहित किया गया। प्रदर्शनी में प्रमुखतः नगर के ही कलाकारों का सक्रिय योग रहा किन्तु हमें इस बात का गर्व है कि हम इस प्रदर्शनी में प्रदेश के वरिष्ठ एवं प्रतिष्ठित कला-मनीषी स्वर्गीय पं० गणेशराम मिश्र, स्वर्गीय उत्तमसिंह तोमर, श्री डी. जे. जोशी (इन्दौर) श्री गोडबोले की श्रेष्ठ कृतियों को जनता के सामने रख सके जिनकी

प्रत्येक ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। उद्घाटन समारोह के अवसर पर प्रदर्शनी के संयोजक ने एक प्रस्ताव रखा कि प्रदेश के इन कला-मनीषियों की समस्त श्रेष्ठ कृतियों के संकलित रूप में प्रकाशन का भार मध्यप्रदेश शासन को उठाना चाहिये। इस प्रकार हम सही अर्थों में इनकी कला-सेवाओं का आदर प्रदर्शन कर सकते हैं। उद्घाटन समारोह के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में स्वागताध्यक्ष श्री नर्मदा प्रसाद खरे ने मुख्य अतिथि का संक्षिप्त परिचय दिया तथा व्यौहार राम मनोहर सिन्हा ने अपने नगर की कलात्मक गति-विधियों का परिचय दिया एवं भविष्य में नगर की कला-समृद्धि की आशा व्यक्त की।

अंत में श्री कामता सागर द्वारा प्रदर्शनी की स्थानीय व्यवस्था एवं अन्य सहयोग के लिए श्रीमती कुसुम मेहता (प्राचार्या होम साइंस कालेज) श्रीमान् व्यौहार राम मनोहर सिन्हा (अध्यक्ष कला-विभाग कलानिकेतन) तथा श्रीमान् रघुनाथ प्रसाद जी तिवारी (सूचना एवं प्रकाशन विभाग) के प्रति आभार प्रदर्शन किया गया एवं सभी कलाकारों के लिए बधाई प्रेषित की गई जिनके सहयोग से ही प्रदर्शनी को एक सफल रूप मिल सका।

प्रदर्शनी की सामान्य जानकारी, कलाकारों एवं कृतियों की सूची एवं परिचय के अवलोकनार्थ एक सचित्र सुन्दर पुस्तिका का भी प्रकाशन किया गया जिसका संपादन श्री विष्णु चौरसिया द्वारा, आवरण श्री व्यौहार राममनोहर सिन्हा द्वारा तथा साज-सज्जा श्री सुधाकर सोनवलकर द्वारा की गई।

—कामता सागर

कवि-सम्मेलन

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन के समारोप-समारोह के रूप में एक ऐसा ऐतिहासिक कवि सम्मेलन जबलपुर के शहीद स्मारक भवन में हुआ, जिसने यह स्पष्ट कर दिया कि इस प्रदेश में प्रतिभाओं का कोई अभाव नहीं है और न ऐसी ही कोई विशेष आवश्यकता है कि अधिक राशि व्यय कर प्रदेश से बाहर के कविगण कवि-सम्मेलनों में बुलाये जायें।

२१ जनवरी ६५ को लब्धप्रतिष्ठ कवि डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन'

की अध्यक्षता में आयोजित इस कवि सम्मेलन का शुभारम्भ किया श्री माधव शुक्ल 'मनोज' ने। उनकी लोकधुन पर आधारित रचना के पश्चात श्री दिनकर सोनवलकर, श्री नरेन्द्र दीपक और श्री कौशल मिश्र ने अपनी रचनायें प्रस्तुत कीं। श्री वासुदेव गोस्वामी की रचना 'पाजामा' के बाद अनंदीसहाय शुक्ल ने एक सशक्त रचना आत्म-हत्या कर लेने वाले साहित्यिक पर पढ़ी जिसकी सबल पंक्तियाँ थीं—

"आखिर पस्त हो गये, प्रखर मध्याह्न में अस्त हो गये।
ऐ मेरे दोस्त ! तुमको यूँ घबराना न था,
कुछ किये बगैर दुनिया से जाना न था।"

श्री नीरज जैन की सैनिक को बुंदेलखंडी पाती, श्री हनुमंत मनघटे, श्री मोहनसिंह सोनी की हिन्दी-मालवी रचनायें, श्री चातक की 'वेश्या' और सर्वश्री गौरीशंकर लहरी, हरिनन्दन चतुर्वेदी, विष्णुदत्त अग्निहोत्री, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा', मुरलीधर दीक्षित 'भ्रांत' ने भी अपनी रचनायें पढ़ पीढ़ियों को मिला दिया।

श्री शिवकुमार श्रीवास्तव ने हास्य-व्यंग प्रधान युग को कटाक्ष करने वाली रचना के बाद 'नाश के क्षण पर सृजन के बंध' के भावों में श्रोताओं को उलझा दिया और फिर श्री मुकुटबिहारी सरोज ने सहज अभिव्यक्ति के दो मार्मिक चित्र रखे। श्री गिरवरसिंह भँवर का राजस्थानी-गीत भी अच्छा रहा।

श्री जीवनलाल वर्मा 'विद्रोही' के माइक पर आते ही हास्य का वातावरण निर्मित हो गया और फिर उनने 'नेहरू के बाद' रचना प्रस्तुत कर ठाठ जमाया। उसके बाद कविवर कुंजबिहारी पांडे दूने जोश से जमे और उनने लोगों के पेट में कवि-सम्मेलन' रचना प्रस्तुत कर बल डाल दिये। श्री रामकुमार शर्मा की 'धीरे-धीरे रात घुल रही' सशक्त रचना के उपरांत श्री गोविन्द अनिल की 'माँ' कविता सारे माहौल पर छा गई। शायद ही कोई श्रोता इस पंक्ति को भूल सके—'राम न हो हर पुत्र भले पर हर माँ कौशल्या होती है।'

अध्यक्ष श्री सुमन ने कुछ छुट-पुट रचनाओं के द्वारा श्रोताओं को मुग्ध करते हुए कहा कि तीर्थ बने इस कवि-सम्मेलन को अब मैं 'मिट्टी की

बारात' एक ऐसी रचना प्रस्तुत कर रहा हूँ जिसमें राष्ट्र नायक पं० नेहरू के जीवन का एक महान इतिहास निहित है। आपने बताया कि नेहरू जी श्रीमती कमला नेहरू की अस्थियाँ २८ वर्ष तक सहेजे रहे जिन्हें उनके कथनानुसार संगम पर उनकी अस्थियों के साथ प्रवाहित किया गया। आपने कहा कि इन महान अस्थियों के विसर्जन का दृश्य देख ताजमहल भी जल गया होगा। और फिर उनने बड़े ही भाव-विभोर होकर वह रचना प्रस्तुत की।

नगर में पहिली बार टिकिट से कवि सम्मेलन हुआ और उसमें प्रदेश के ही कवियों ने समाँ बाँधा यह विशेषता रही। आभार-प्रदर्शन प्रभारी श्री रामशंकर मिश्र ने किया।

—मोहन शशि

●

—"कमालपाशा के हाथ में जब तुर्की की बागडोर आई तब उन्होंने अपने सलाहकारों से पूछा कि राष्ट्रभाषा तुर्की करने में कितना समय लगेगा ? हमारे अँग्रेजी परस्त भाइयों के हमप्याला जो वहाँ उपस्थित थे—दस वर्ष का समय कहा। इस पर कमालपाशा ने उदारता-पूर्वक कहा कि समझ लीजिये कल सुबह १० बजे १० वर्ष व्यतीत हो गये और तुर्की राजभाषा हो गई।"

—"दक्षिण भारतीय व बंगाल के निवासी संस्कृत सेवी तथा बुद्धिजीवी होने के कारण हिन्दी को अपनी पकड़ का मानते हैं पर व्यक्त नहीं करते। दक्षिण व बंगाल अँग्रेजी नौकरशाही के कारखाने रहे हैं अतएव इनको हिन्दी में भी प्रभुत्व हासिल करना बाँये हाथ का खेल है।"

सम्मेलन की कार्य-कारिणी-समिति

पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र	:	अध्यक्ष
पं० शम्भुनाथ शुक्ल	:	उपाध्यक्ष
डॉ० राजबली पाण्डेय	:	उपाध्यक्ष
श्रीमती चन्द्रप्रभा पटेरिया	:	कोषाध्यक्ष
श्री नर्मदा प्रसाद खरे	:	प्रधान मंत्री
श्री प्रभागचन्द्र शर्मा	:	संयुक्त मंत्री
श्री हरिकृष्ण प्रेमी	:	साहित्य-मंत्री
श्री युगलबिहारी अग्निहोत्री	:	प्रचार-मत्री
श्री शारदाप्रसाद तिवारी	:	सहयोगी मंत्री, रायपुर संभाग
डॉ० कोमलसिंह सोलंकी	:	सहयोगी मंत्री, ग्वालियर संभाग
श्री महेन्द्र कुमार 'मानव'	:	सहयोगी मंत्री, रींवा संभाग
डॉ० भवानीप्रसाद तिवारी	:	सदस्य
डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र		,,
डॉ० महाराज रघुवीरसिंह		,,
श्री व्यौहार राजेन्द्रसिंह		,,
श्री मायाराम सुरजन		,,
डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन'		,,
श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'		,,
श्री नरसिंह राव दीक्षित		,,
श्री गौतम शर्मा		,,
डॉ० गजानन शर्मा		,,
श्री श्रीनिवास शुक्ल		,,
श्री उर्मिलाप्रसाद शुक्ल		,,
श्री शरद कोठारी		,,

विशेष रूप से आमंत्रित सदस्य--

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

डॉ० उदयनारायण तिवारी

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी

श्री गौरीशंकर लहरी

श्री मायाराम सुरजन
श्री राधेश्याम अग्रवाल
श्री निर्मलचन्द जैन
श्री एम० एल० दीक्षित
श्री सच्चिदानंद अवस्थी
श्री पी० डी० सुल्लेरे

साहित्य-परिषद—

श्री हरिशंकर परसाई

अर्थसमिति—

श्री राजेन्द्रनाथ वासुदेव

आवास तथा भोजन—

श्री हरकचंद जैन

सांस्कृतिक कार्यक्रम—

श्री डी० व्ही० राव

प्रबन्ध तथा यातायात—

श्री ललितकुमार श्रीवास्तव

प्रचार—

श्री निर्मल नारद
श्री हीरालाल गुप्त

कवि-सम्मेलन—

श्री रामशंकर मिश्र

प्रदर्शनी—

श्री सौभाग्यमल जैन
प्रो० शंकर तिवारी
श्री शशिन यादव
श्री विजय ठाकुर

सहयोगी—

श्री कामता सागर
श्री जवाहरलाल जैन
श्री कृष्ण बिहारी पाण्डेय
श्री राव बी० एम०
श्री राजकुमार सुमित्र
श्री रघुवीर श्रीवास्तव

P. C. MADAN & Co.
CHARTERED ACCOUNTANTS
JABALPUR

MADHYA PRADESH HINDI SAHITYA SAMMELAN RECEPTION SAMITI, JABALPUR (M. P.)
RECEIPTS & PAYMENTS STATEMENT FOR THE PERIOD : 18-2-63 to 31-12-65

Previous Year Rs.	np.	RECEIPTS	Rs.	np.	Rs.	np.
		To, Opening Balance ...			—	—
		„ Membership Subscription ..			1,171	00
		„ Delegates fee ...			76	00
		„ Ticket Sale ...			334	00
		„ Donation ...			251	00
		To, Grant-in-aid ...			—	—
		From Education Ministry M. P. ...	5,000	00		
		„ Corporation, Jabalpur ...	2,000	00	7,000	00
		To, Loan ...			—	—
		Taken from Shri N. P. Khare ...			1,000	00
		Total Rs. ...	...	...	9,832	00

Previous Year Rs.	np.	PAYMENTS	Rs.	np.	Rs.	np.
		By Salary (Peon) ...			220	00
		„ Stationery ...			48	68
		„ Typing ...			247	00
		„ Electric Charges (including deposit of Rs. 100/-) ...			250	00
		„ Telephone ...			320	50
		„ Postage ...			459	55
		„ Refreshment ...			236	60
		„ Labour Charges ...			7	00
		„ Miscellaneous ..			8	27
		„ Stage Expenses ..			135	25
		„ Publicity ..			843	82
		„ Printing ...			3,695	15
		„ Art Exhibition ..			113	28
		„ Conveyance ...			220	10
		„ Boarding and Lodging ...			1,397	14
		„ T A. To invitees ...			1,088	00
		„ Reception and Entertainment ...			341	25
		„ Closing Balance (As per C. B. with the Chairman)...			200	41
		Total Rs. ...			9,832	00

We have to state that the figures incorporated in the statement of Receipts and Payments as setforth above, subject to separate notes, are according to the books of a/cs and vouchers shown and the information and explanations rendered.

JABALPUR.
Deted 7-2-1966

Sd/- P. C. Madan
Chartered Accountants

CERTIFICATE:

Certified that the above statement is true and correct.

सही—नर्मदा प्रसाद खरे
Chairman.